दादा भगवान कथित

अहिंसा

क्रोध
मान
कषाय
माया
लोभ

अहिंसा

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100

प्रथम संस्करण : 3,000 प्रतियाँ जून, 2010
रीप्रिन्ट : 10,000 प्रतियाँ जून, 2011 से अक्तूबर, 2014
नई रीप्रिन्ट : 3,000 प्रतियाँ नवम्बर, 2016

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 25 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
B-99, इलेक्ट्रॉनिक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2142

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

'दादा भगवान' कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि "यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो 'ए.एम.पटेल' हैं। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।"

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

संपादकीय

हिंसा के सागर में हिंसा ही होती है, पर हिंसा के सागर में अहिंसा प्राप्त करनी हो तो परम पूज्य दादाश्री के मुख से निकली अहिंसा की वाणी पढ़कर, मनन करके फॉलो हो तब ही हो सके ऐसा है। बाकी, स्थूल अहिंसा बहुत गहरे तक पालनेवाले पड़े हैं पर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अहिंसा समझनी ही मुश्किल है। तो उसकी प्राप्ति की बात ही कहाँ रही?

स्थूल जीवों की हिंसा वैसे ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवों की हिंसा, जैसे कि वायुकाय-तेउकाय आदि से लेकर ठेठ भावहिंसा, भावमरण तक की सच्ची समझ यदि न बरते तो वह परिणमित नहीं होता और मात्र शब्द में या क्रिया में ही अहिंसा रुक जाती है।

हिंसा के यथार्थ स्वरूप का दर्शन तो जो हिंसा को संपूर्ण पार करके संपूर्ण अहिंसक पद में बैठे हैं, वे ही कर और करवा सकते हैं। 'खुद' 'आत्मस्वरूप' में स्थित हों, तब वह एक ही ऐसा स्थान है जहाँ संपूर्ण अहिंसा बरतती है! और वहाँ तो तीर्थंकरों और ज्ञानियों की ही वर्तना!!! हिंसा के सागर में संपूर्ण अहिंसक रूप से बरतते हैं ऐसे ज्ञानी पुरुष के माध्यम से प्रकाशमान हुए हिंसा संबंधी, स्थूलहिंसा-अहिंसा से लेकर सूक्ष्मतम हिंसा-अहिंसा तक का सचोट दर्शन यहाँ संकलित करके इस अंतरआशय से प्रकाशित किया गया है कि जिससे घोर हिंसा में जकड़े हुए इस काल केमनुष्यों की दृष्टि कुछ बदले और इस भव-परभव का श्रेय उनके माध्यम से सधे।

बाकी द्रव्यहिंसा से तो कौन बच सकता है? खुद तीर्थंकरों ने भी निर्वाण से पहले अंतिम श्वास लेकर छोड़ा था, तब कितने ही वायुकाय जीव मर गए थे! वैसी हिंसा का दोष उन्हें यदि तब लगता तो उन्हें उस पाप के लिए फिर वापिस किसी के यहाँ जन्म लेना ही पड़ता। तो मोक्ष संभव है? तब उनके पास ऐसी वह कौन-सी प्राप्ति होगी कि जिसके आधार पर वे सर्व पापों से, पुण्यों से और क्रिया मात्र से मुक्त रहे और मोक्ष में गए? वे तमाम रहस्य प्रकट ज्ञानी कि जिनके हृदय में तीर्थंकरों का हृदय का ज्ञान जैसा है वैसा प्रकाशित हुआ हो, वे ही कर सकते हैं, और वह यहाँ पर जैसा है वैसा, प्रकाशित हो रहा है। इस काल के ज्ञानी परम पूज्य दादाश्री के श्रीमुख से निकली वाणी अहिंसा के ग्रंथ द्वारा संकलित हुई है, जो मोक्षमार्ग के चाहकों को अहिंसा के लिए अति-अति सरल गाइड के रूप में उपयोगी होगी।

- डॉ. नीरु बहन अमीन के जय सच्चिदानंद

अनुक्रमणिका

अहिंसा

प्रयाण, 'अहिंसा परमोधर्म' की ओर

प्रश्नकर्ता : 'अहिंसा के मार्ग पर धार्मिक-अध्यात्मिक उन्नति' इस विषय पर समझाइए।

दादाश्री : अहिंसा, वही धर्म है और अहिंसा वही अध्यात्म की उन्नति है। पर अहिंसा मतलब 'मन-वचन-काया से किसी भी जीव को किंचितमात्र दुःख न हो' उस जानपने में रहना चाहिए, श्रद्धा में रहना चाहिए, तब वह हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : 'अहिंसा परमोधर्म' - यह मंत्र जीवन में किस तरह काम आता है?

दादाश्री : वह तो सुबह पहले बाहर निकलते समय 'मन-वचन-काया से किसी भी जीव को किंचित् मात्र दुःख न हो' ऐसी पाँच बार भावना करके और फिर निकलना चाहिए। फिर किसी को दुःख हो गया हो, उसे याद रखकर उसका पश्चाताप करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किसी को भी दुःख नहीं दें, वैसा जीवन इस काल में किस तरह जीया जा सकता है?

दादाश्री : वैसा आपको भाव ही रखना है और वैसा जतन करना चाहिए। जतन नहीं हो सके उसका पश्चाताप करना।

प्रश्नकर्ता : अपने आसपास संबंधित जीवों में से किसी जीव को दुःख न हो, वैसा जीवन संभव है क्या? हमारे आसपास में हर एक जीव को हर एक संयोग में संतोष दिया जा सकता है?

दादाश्री : जिसे ऐसा देने की इच्छा है, वह सबकुछ कर सकता है। एक जन्म में सिद्ध नहीं होगा, तो दो-तीन जन्मों में भी सिद्ध होगा ही! आपका ध्येय निश्चित होना चाहिए, लक्ष्य ही होना चाहिए, तो सिद्ध हुए बगैर रहता ही नहीं।

टले हिंसा, अहिंसा से...

प्रश्नकर्ता : हिंसा रोकने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : निरंतर अहिंसकभाव उत्पन्न करने चाहिए। मुझे लोग कहते हैं कि, 'हिंसा और अहिंसा कब तक पालनी?' मैंने कहा, 'हिंसा और अहिंसा का भेद महावीर भगवान डालकर ही गए हैं।' वे जानते थे कि बाद में दूषमकाल आनेवाला है। भगवान क्या नहीं जानते थे कि हिंसा किसे कहनी और हिंसा किसे नहीं कहनी? भगवान महावीर क्या कहते हैं कि हिंसा के सामने अहिंसा रखो। सामनेवाला मनुष्य हिंसा का हथियार काम में ले तो हम अहिंसा का हथियार काम में लें, तो सुख आएगा। नहीं तो हिंसा से हिंसा कभी भी बंद होनेवाली नहीं है। अहिंसा से हिंसा बंद होगी।

समझ, अहिंसा की

प्रश्नकर्ता : लोग हिंसा की तरफ बहुत जा रहे हैं, तो अहिंसा की तरफ मोड़ने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हमें उन्हें समझाना चाहिए। समझाएँ तो अहिंसा की तरफ मुड़ेंगे कि 'भाई, इसमें, ये जीव मात्र में भगवान रहे हुए हैं। इसलिए आप जीवों को मारोगे तो उन्हें बहुत दुःख होगा, उसका आपको दोष लगेगा और उससे आपको आवरण आएँगे और भयंकर अधोगति में जाना पड़ेगा।' ऐसा समझाएँ तो ढंग से चलेंगे। जीवहिंसा से तो बुद्धि भी बिगड़ जाती है। ऐसा किसी को समझाते हो?

प्रश्नकर्ता : परन्तु अहिंसा पालने के प्रति अपनी पक्की भावना हो, परन्तु कुछ व्यक्ति उसमें बिलकुल नहीं मानते हों तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अपनी पक्की अहिंसा पालने की भावना हो तो हमें अहिंसा पालनी चाहिए। फिर भी कोई व्यक्ति नहीं मानता हो तो उसे धीरे से समझाना चाहिए। वह भी धीरे-धीरे समझाएँ, जिससे वह मानने लगे। अपना प्रयत्न होगा तो एक दिन हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हिंसा रोकने के प्रयत्नों में निमित्त बनने के लिए आपने पहले समझाया था। जो अहिंसा के आचार को नहीं मानता हो तो उसे प्रेमपूर्वक समझाकर बात करनी चाहिए। पर प्रेमपूर्वक समझाने के बावजूद भी न माने तो क्या करना चाहिए? हिंसा चलने देनी या शक्ति द्वारा रोकने का प्रयत्न करना योग्य माना जाएगा?

दादाश्री : हमें भगवान की भक्ति इस तरह करनी, जिन भगवान को आप मानते हों उनकी, कि 'हे भगवान, हर एक को हिंसा रहित बनाओ।' ऐसी आप भावना करना।

खटमल, एक समस्या (?)

प्रश्नकर्ता : घर में खटमल बहुत बढ़ गए हों तो क्या करें?

दादाश्री : एक बार मेरे घर में खटमल बढ़ गए थे न! बहुत वर्षों पहले की बात है। वे सब यहाँ गरदन पर काटते थे न, तब मैं यहाँ पैर पर रख देता था। यहाँ गले पर का ही बस सहन नहीं होता था, इसलिए यहाँ गले पर काटें, तब पैर के पास रख देता था। क्योंकि अपनी होटल में आया और कोई भूखा जाए, वह फिज़ूल कहलाए न?! वह अपने यहाँ भोजन करके जाए तो अच्छा न! पर आपको इतनी अधिक शक्ति नहीं आएगी। इसलिए आपको वैसा नहीं कहता। आपको तो खटमल पकड़कर और बाहर डाल आना है। ताकि आपको मन में संतोष हो कि यह खटमल बाहर गया।

अब नियम ऐसा है कि आप लाख खटमल बाहर डालकर आओ न, पर आज रात को सात काटनेवाले हों तो सात काटे बिना रहनेवाले नहीं हैं। आप मार डालोगे तब भी सात काटेंगे, घर के बाहर डाल

आओगे तब भी सात काटेंगे, दूर डाल आओगे तब भी सात काटेंगे और कुछ नहीं करो तब भी सात काटेंगे।

वह खटमल क्या कहता है? 'यदि तू कुलीन है तो हमें हमारी खुराक लेने दे और कुलीन नहीं है तो हम ऐसे ही खाकर जाएँगे, पर आप सो जाओगे तब। इसलिए तू पहले से ही कुलीनता रख न!' इसलिए मैं कुलीन बन गया था। पूरे शरीर पर काटते हों न, तो काटने दूँ। खटमल मेरे हाथ की पकड़ में भी आ जाते थे। पर उसे यहाँ पैर पर वापिस रख देता। नहीं तो फिर भी नींद में तो पूरा भोजन कर ही जाता है न! और वह खटमल साथ में ले जाने के लिए दूसरा बर्तन नहीं लाया। अपने खुद के लायक ही खाकर वापिस घर चला जाता है और फिर ऐसा भी नहीं कि आराम से दस-पंद्रह दिन का एक साथ खा ले! इसलिए उसे भूखा किस तरह निकाला जाए?! हेय! कितने खाकर जाते हैं, आराम से! तब रात को हमें आनंद होता था कि इतने सारे भोजन कर गए, दो व्यक्तियों को भोजन कराने की शक्ति नहीं और ये तो इतने सारों को भोजन करवाया!!

खटमलमार, आप खटमल मेकर हो?

प्रश्नकर्ता : परन्तु घर में खटमल-मच्छर-कोक्रोच परेशान करें तो हमें कोई कदम उठाने चाहिए?

दादाश्री : खटमल-मच्छर-कोक्रोच नहीं हों, उसके लिए हमें पोंछा वगैरह वह सब करना चाहिए, सफाई रखनी चाहिए। कोक्रोच जो हो गए हों, उन्हें पकड़कर हमें बाहर किसी जगह पर, बहुत दूर, गाँव से बाहर दूर जाकर डाल आना चाहिए। पर उन्हें मारना तो नहीं ही चाहिए।

बहुत बड़ा कलेक्टर जैसा एक व्यक्ति था। उनके घर मुझे उन्होंने बुलाया था। मुझे कहते हैं, 'खटमल तो मार डालने ही चाहिए।' मैंने कहा, 'कहाँ लिखा है ऐसा?' तब वे कहते हैं, 'पर वे तो हमें काटते हैं और अपना खून चूस जाते हैं।' मैंने कहा कि, ''आपको मारने का

अधिकार कितना है, वह आपको नियमपूर्वक समझाता हूँ। फिर मारो या नहीं मारो, उसमें मैं आपको कुछ नहीं कहता। इस जगत् में कोई भी व्यक्ति एक खटमल खुद बना दे तो फिर मारना। जो आप 'क्रियेट' कर सकते हो, उसका आप नाश कर सकते हो। आप 'क्रियेट' नहीं करते, उसका नाश आप नहीं कर सकते। ''

इसलिए जो जीव आप बना सकते हो, उसे मारने का अधिकार है। आप यदि बना नहीं सकते हो, यदि आप 'क्रियेट' नहीं कर सकते हो तो मारने का आपको अधिकार नहीं है। यह कुर्सी आप बनाते हो उस कुर्सी को तोड़ सकते हो, कप-प्लेट बनाओ तो तोड़ सकते हो, पर जो बनाया नहीं जा सकता, उन्हें मारने का आपको अधिकार नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो वे काटने के लिए क्यों आते हैं?

दादाश्री : हिसाब है आपका इसलिए आते हैं और यह देह कोई आपका नहीं है, आपकी मालिकी का नहीं है। यह सारा माल आप चोरी करके लाए हो, इसलिए उसमें से वे खटमल आपके पास से चोरी करके ले जाते हैं। वे सारे हिसाब चुकता हो रहे हैं। इसलिए अब मारना-करना मत।

भगवान के बाग को नहीं लूटते

ऐसा है, यहाँ बगीचा हो और बगीचे के बाहर अहाता हो। और अहाते के बाहर तोरई-लौकी, वह सब लटक रहा हो, उसके मूल मालिक की स्पेस के बाहर लटक रहा हो, फिर भी लोग क्या कहते हैं? 'अरे, यह तो उस सलिया का बाग है, मत तोड़ना। नहीं तो मियांभाई मार मारकर तेल निकाल देगा।' और कोई अपने लोगों का हो तो लोग तोड़ जाते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि यह बाग तो अहिंसक भाववाले का है। वे तो जाने देंगे। लेट गो करेंगे। और सलिया तो अच्छी तरह मार मारेगा। इसलिए सलिया के बाग पर से एक तोरई या लौकी नहीं ली जा सकती, तो यह भगवान के बाग

में से खटमल किसलिए मारते हो? भगवान का बाग आप लूटते हो?!! आपको समझ में आया? इसलिए एक भी जीव को नहीं मार सकते।

तप - प्राप्त तप...

प्रश्नकर्ता : परन्तु खटमल काट खाए उसका क्या?

दादाश्री : पर उसकी खुराक ही खून है। उसे कोई हम खिचड़ी दें तो खाएगा? उसे बहुत घी डालकर खिचड़ी दें तब भी खाएगा? ना। उसकी खुराक ही 'ब्लड' है।

प्रश्नकर्ता : पर उसे काटने देना वह व्याजबी नहीं ही है न?!

दादाश्री : पर उपवास करके अंदर आग लगती है वह चला लेनी?! तब यह तप करो न!! यह तप तो प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। खुद खड़े किए हुए तप किसलिए करते हो?! आ गए हैं वे तप करो न! वे आए हुए तप, वे प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है और खड़े किए हुए तप, वे संसार का कारण है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, बहुत मज़ेदार बात कही। वह बहुत खींचतान करके तप करते हैं, उससे तो यह जो आ पड़ें, वे तप होने दो।

दादाश्री : हाँ, वह तो हम खींचकर लाते हैं और यह तो प्राप्त है, आ पड़ा है आराम से! हम दूसरों को कोई बुलाने नहीं जाते। जितने खटमल आए हों उतने भोजन करें आराम से, 'तुम्हारा ही घर है।' फिर भोजन करवाकर भेजें।

माता ने संस्कार दिया अहिंसा धर्म का

हमारी मदर मुझसे छत्तीस वर्ष बड़ी थीं। मैंने मदर से पूछा कि, 'घर में खटमल हुए हैं, वे आपको काटते नहीं?' तब मदर कहती हैं, ''भई, काटते तो हैं। पर वे थोड़े ही कोई टिफिन लेकर आते हैं दूसरे सब की तरह कि 'दीजिए हमें माईबाप?' वह बेचारा कोई बरतन

लेकर आता नहीं और उसका खाकर वापिस चला जाता है!'' मैंने कहा, धन्य है माँजी को! और इस बेटे को भी धन्य है!!

किसी को पत्थर मारकर आया होऊँ न, तो माँजी मुझे क्या कहती? 'उसे खून निकलेगा। उसकी माँ नहीं है तो उस बेचारे की दवाई कौन करेगा? और तेरे लिए तो मैं हूँ। तू मार खाकर आना, मैं तुझे दवाई लगा दूँगी। मार खाकर आना, पर मारकर मत आना।' बोलो अब, ऐसी माँ महावीर बनाए या नहीं बनाए?!

प्रश्नकर्ता : अभी तो सब उल्टा है। अभी तो कहेंगे, देख, जो मार खाकर आया है तो!

दादाश्री : आज नहीं पहले से ही उल्टा है। अभी इस काल के कारण कोई बदलाव नहीं है। वह तो पहले से ही उल्टा था, ऐसा ही है यह जगत्! इसमें से जिसे भगवान महावीर का शिष्य होना हो वह हो सकता है, नहीं तो लोगों के शिष्य तो होना ही पड़ेगा। वे गुरु, वे बॉस और हम उनके शिष्य। मार खाया ही करो न! इसके बदले तो महावीर भगवान अपने बॉस की तरह अच्छे, वे वीतराग तो हैं। लड़ते-करते नहीं!

सफाई रखो, दवाई मत छिड़को

कितने ही खटमल मारते-करते नहीं, पर बिस्तर और वह सब बाहर धूप में सुखाते हैं। पर मैंने तो उसके लिए भी अपने घर में मना कर दिया था, बिस्तर सूखाने को मना ही कर दिया था। मैंने कहा, 'धूप में किसलिए बेचारे खटमल को परेशान करते हो?' तब वे कहते हैं, 'तब उनका कब अंत आएगा?' मैंने कहा, 'खटमल मारने से खटमल की बस्ती कम नहीं हो जाती। वह एक नासमझी है कि खटमल मारने से कम होते हैं। मारने से कम नहीं होते। कम लगते हैं ज़रूर, पर दूसरे दिन उतने ही होते हैं।'

इसलिए हमें तो साफ-सफाई सब रखनी चाहिए। साफ-सफाई हो तो खटमल खड़े नहीं रहें। पर उसके ऊपर दवाई छिड़कें तो वह

गुनाह ही कहलाता है न! और दवाईयों से मरते नहीं है। एक बार मरे हुए दिखते हैं, पर वापिस दूसरी जगह उत्पन्न हो जाते हैं। खटमल का एक नियम होता है। मैंने खोजबीन की थी इस पर कि किसी काल में एक भी दिखता नहीं है। क्योंकि यह कुछ खास कालवर्ती है और जब उसका सीज़न आए, तब ढेरों निकलते हैं, तब चाहे जैसी दवाई डालो फिर भी निकलते ही रहेंगे।

पूरे करो पेमेन्ट फटाफट

प्रश्नकर्ता : वे खटमल उनका हिसाब हो उतना ही लेते हैं न?

दादाश्री : हमने तो पहले ही पेमेन्ट चुका दिया था, इसलिए अभी बहुत मिलते नहीं हैं। पर अभी भी खटमल कभी हमारे पास आ जाएँ, तब भी वे हमें पहचानते हैं कि ये यहाँ कोई मारनेवाले नहीं हैं, परेशान करनेवाले नहीं हैं। हमें पहचानते हैं। वे अंधकार में भी हमारे हाथ में ही आते हैं। पर वे जानते हैं कि हमें छोड़ देंगे। हमें पहचानते हैं। दूसरे सब जीवों को भी पहचानते हैं कि ये निर्दयी हैं, यह ऐसा है। क्योंकि उसके अंदर भी आत्मा है। तो क्यों न पहचाने?!

और यह हिसाब तो चुकाये बिना छुटकारा ही नहीं। जिस-जिस के खून पीए होंगे न, फिर उन्हें खून पिलाना पड़ेगा। ऐसा है न, वो ब्लड बैंक होता है न? वैसा यह खटमल बैंक कहलाता है। कोई दो लेकर आया हो तो दो लेकर जाता है। ऐसा यह सारा बैंक कहलाता है, तो बैंक में सब जमा हो जाता है।

वह खून पीता है या छुड़वाता है देहभाव?

यानी खटमल काटते हों तो उसे भूखा नहीं जाने देना चाहिए। हम इतने श्रीमंत व्यक्ति और वहाँ से वह गरीब व्यक्ति भूखा जाए, वह कैसे पुसाए?

और मेरा कहना है कि हमें न पुसाए तो उसे बाहर रख आएँ। हमें पुसाना चाहिए, उसे भोजन करवाने की शक्ति होनी चाहिए। वह

शक्ति नहीं हो तो बाहर रख आएँ कि भाई, आप दूसरी जगह भोजन कर लो। और भोजन करवाने की शक्ति हो तो भोजन करवा के जाने देना। और वह भोजन करके जाएगा तो आपको बहुत लाभ देकर जाएगा। आत्मा मुक्त कर देगा। देह में ज़रा भाव रहा होगा तो छूट जाएगा। और ये खटमल क्या कहते हैं? 'आप सोते हो क्या समझकर? आपका कोई काम कर लो न!' यानी वे तो चौकीदार है।

नहीं वह कानून से बाहर

प्रश्नकर्ता : और ये मच्छर बहुत त्रास देते है, वह?

दादाश्री : ऐसा है न, इस जगत् में कोई भी वस्तु त्रास देती है न, वह नियम से बाहर कोई त्रास दे सकें ऐसा है ही नहीं। इसलिए वह कानून से बाहर नहीं है। आप नियम के अनुसार त्रास प्राप्त कर रहे हो। अब आपको बचना हो तो आप मच्छरदानी रखो। दूसरा रखो, साधन करो। पर उसे मारना वह गुनाह है।

प्रश्नकर्ता : बचाव करना, मारना नहीं है।

दादाश्री : हाँ, बचाव करना।

प्रश्नकर्ता : पर मच्छर को मारें, पर 'श्रीराम' कहें तो उसकी गति ऊँची जाती है?

दादाश्री : पर वह अपनी अधोगति करता है। क्योंकि उसे त्रास होता है?

प्रश्नकर्ता : संतों को मच्छर काटते हैं या नहीं?

दादाश्री : भगवान को काटे थे न! महावीर भगवान को तो बहुत काटे थे। हिसाब चुकाए बिना रहते नहीं न!

अपने ही हिसाब

यानी एक मच्छर छूता है, वह गप्प नहीं है। तो दूसरी कौन-सी चीज़ गप्प में चलेगी?! और फिर यहाँ पैर के पास उसे छूना हो तब

भी नहीं छू पाता, यहाँ हाथ पर ही छुए तभी मेल खाए, इस जगह पर ही! इतना अधिक *गोठवणी* (व्यवस्था, प्रबन्ध, आयोजन, सेटिंग) वाला यह जगत् है। यानी यह जगत् कोई गप्प है? बिलकुल 'रेग्युलेटर ऑफ द वर्ल्ड' है और वर्ल्ड को निरंतर रेग्युलेशन में ही रखता है और यह सब मैं खुद देखकर कहता हूँ।

नहीं कर सकते कहीं भी, हिटलरिज़म

वर्ल्ड में कोई आपमें दख़ल कर सके ऐसी स्थिति में ही नहीं है। इसलिए वर्ल्ड का दोष निकालना मत, आपका ही दोष है। आपने जितनी दख़ल की है उनके ही ये प्रतिघोष है। आपने दख़ल न करी हो, उसका प्रतिघोष आपको लगेगा नहीं।

इसलिए एक मच्छर भी आपको छू नहीं सकता, यदि आप दख़ल न करो तो। इस बिस्तर में निरे खटमल हैं, और वहाँ आपको सुलाएँ और यदि आप दख़ल बगैर के हो तो एक भी खटमल आपको छुएगा नहीं। कौन-सा कानून होगा इसके पीछे? यह तो खटमल के लिए लोग विचार करनेवाले हैं न, कि 'अरे, चुन डालो, ऐसा करो, वैसा करो?' ऐसी दख़ल करते हैं न, सभी? और दवाई छिड़कते हैं? हिटलरिज़म जैसा करते हैं? करते हैं क्या ऐसा? फिर भी खटमल कहते हैं, 'हमारे वंश का नाश नहीं होनेवाला। हमारा वंश बढ़ता ही जानेवाला है।'

इसलिए यदि आपकी दख़ल बंद हो जाएगी तो सब साफ हो जाएगा। दख़ल नहीं हो तो कुछ काटे ऐसा नहीं है इस जगत् में। नहीं तो यह दख़ल किसी को छोड़ती नहीं।

हमेशा ही हिसाब चुकता हो गया ऐसा कब कहलाएगा? मच्छरों के बीच बैठा हो तब भी मच्छर न छुए, तब चुकता हो गया कहलाएगा। मच्छर उसका स्वभाव भूल जाता है। खटमल उसका स्वभाव भूल जाता है। यहाँ पर कोई मारता हुआ आया हो न, पर मुझे देखे तो वह मारना भूल जाता है। उसके विचार ही सारे बदल जाते हैं, उसे असर होता है, अहिंसा का इतना सारा इफेक्ट होता है।

मच्छर को मालूम नहीं कि मैं चंदूभाई के पास जा रहा हूँ या चंदूभाई को मालूम नहीं कि यह मच्छर मेरे पास आ रहा है। यह 'व्यवस्थित' संयोगकाल सब ऐसा कर देता है कि दोनों को मिलाकर दोनों के भाव चुकता करके और अलग हो जाते हैं फिर। इतना अधिक यह 'व्यवस्थित' है! इसलिए मच्छर को हवा में खींचता खींचता यहाँ पर लाता है और डंक मारकर वापिस हवा में खिंच जाता है। फिर जाने कहाँ वह मील दूर गया होता है! जो टेढ़ा होता है उसे फल देता है वापिस।

नहीं कोई फर्क, काँटें और मच्छर में

यह मच्छर काटता है तब लोगों को मच्छर का दोष दिखता है और वो काँटा काटता है तब क्या करता है? इतना बड़ा काँटा लग जाए तो? उस काँटे में और मच्छर में फर्क नहीं है ज़रा भी, भगवान ने फर्क देखा नहीं है। जो काटता है न, वह आत्मा नहीं है। वे काँटे ही हैं सभी। उस काँटे का दोष नहीं दिखता न! उसका क्या कारण है?

प्रश्नकर्ता : जीवित कोई निमित्त दिखता नहीं न वहाँ!

दादाश्री : और उसमें जीवित दिखता है न, इसलिए वह समझता है कि इसीने मुझे काटा। 'खुद' भ्रांतिवाला, फिर जगत् उसे भ्रांतिवाला ही दिखा करता है। आत्मा किसी को काटता ही नहीं। यह सब अनात्मा होकर दंड दे रहा है जगत् को। परमात्मा दंड नहीं देते। आत्मा भी दंड नहीं देता, यह तो बबूल के काँटे ही सबको चुभते रहते हैं।

पहाड़ पर से इतना बड़ा पत्थर गिरे सिर पर तो ऊपर देख लेता है कि किसी ने लुढ़काया या नहीं लुढ़काया? फिर कोई न दिखे तब चुप! और किसी ने अपने ऊपर कंकड़ मारा हो वहाँ हल्दीघाटी की लड़ाई कर लेता है। कारण क्या है? कि भ्रांतदृष्टि है!

यह 'अक्रम विज्ञान' क्या कहता है? कि वह काँटा भी निमित्त है और व्यक्ति भी निमित्त है, दोष आपका ही है। इस फूल को कुचलें तो उसका फल नहीं आता और काँटे को कुचलें तो फल आता है, वैसे

ही इन मनुष्यों में भी है। इसलिए सँभालकर चलो! काँटा चुभना या फिर बिच्छू का काटना दोनों कर्मफल है। यह फल आया, पर किसका फल? मेरा खुद का। तब कहे, 'उसे क्या लेना-देना?' वे तो बेचारे निमित्त हैं। भोजन करवानेला कौन होता है और परोसनेवाला कौन होता है?

इसलिए सावधानी से चलना। यह जगत् बहुत अलग तरह का है। बिलकुल न्यायस्वरूप है। मैंने सारी ज़िन्दगी का हिसाब निकाला है न, वह हिसाब निकालते-निकालते इतना अच्छा हिसाब निकाला है, और जगत् को मैं दूँगा एक दिन वह हिसाब! तब जगत् को ठंडक लगेगी। नहीं तो ठंडक नहीं लगती। अनुभव में तो लेना पड़ेगा न! अनुभव के स्टेज पर लें तब ही काम होगा न! कि 'इसका क्या परिणाम आएगा' ऐसा रिसर्च तो करना पड़ेगा न!

किसी का जीने का राइट तोड़ना चाहिए?

इसकी मैंने जाँच भी करी हुई है फिर। क्या अक्कलवालों ने आबरू पाई! चूहा, वह बिल्ली का भोजन है। खाने दो न उसे! और यह छछूंदर जाता हो न, तो बिल्ली उसे नहीं छूती। बिल्ली यदि भूखी ही हो और चूहा, जीवजंतु, जीवों को खा जाती हो तब छछूंदर को क्यों नहीं खाती? पर वह छछूंदर को नहीं छूती। इस पर विचार करना।

ये कोई पुण्य करे थे इसलिए बैठे-बैठे खाने का मिला। और इन मज़दूरों को तो मेहनत करें उसके बाद पैसे लाएँ तब खाने का मिलता है। इसलिए हमें, अब किसी को दुःख नहीं हो, जानवर को-छोटे जीवजंतुओं को भी दुःख नहीं हो उस तरह वर्तन रखना चाहिए। ऐसे तो लोग भगवान का नाम लेते हैं और जिनमें भगवान रहते हैं, उन्हें मारते रहते हैं। साँप निकले हो तो मार डालते हैं, खटमल को भी मार डालते हैं, ऐसे शूरवीर(!) लोग! इस तरह लोग मारते हैं सही? बड़े शूरवीर कहलाते हैं न?! इसलिए लोग मारने में शूरवीर वापिस! और यह सर्जन किसका, जो कि विसर्जन में खुद तैयार हो जाता है?! आप सर्जन कर सको तो उसका विसर्जन कर सकते हो। कोई न्याय होगा या नहीं होगा?

ऐसा है न, ये तो रिलेटिव व्यू पोइन्ट से खटमल हैं और रियल व्यू पोइन्ट से शुद्धात्मा हैं। आपको शुद्धात्मा को मारना है? नहीं पसंद हो तो बाहर जाकर डाल आना न! अब सबको मारकर मनुष्य सुख ढूँढता है इसमें। मच्छर मारना, खटमल मारना, जो आया हो उसे मारना और सुख ढूँढना, ये दोनों किस तरह साथ में हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : घर में चींटियाँ बहुत निकलती है तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : जिस रूम में चींटियाँ निकली हों वह रूम बंद रखना। इसे उपद्रव कहा जाता है। कुदरत का नियम ऐसा है कि कुछ दिन उनका उपद्रव चलता रहता है। फिर उसका टाइम पूरा हो जाए तब उपद्रव बंद हो जाता है, अपने आप ही कुदरती ही! इसलिए हमें रूम बंद रखना, यह सब आप पता लगाओगे तो पता चलेगा। यह परमानेन्ट उपद्रव है या टेम्परेरी?

प्रश्नकर्ता : अधिकतर चींटियाँ सब रसोई में ही आती हैं, तो रसोई किस तरह बंद रखनी?

दादाश्री : वह तो सब विकल्प है। हमें यह समझ लेना है। उपद्रव हो वहाँ से खिसक जाना, दो रसोई रखो, एक स्टोव अलग रखो। उस दिन कुछ उबालकर खा लेना। मारने की जोखिमदारी बहुत जबरदस्त है।

प्रश्नकर्ता : रोज़ के व्यवहार में अवरोध में आते हैं, उन्हें ही मार डालते हैं और दूसरे सबको तो मारने जाते नहीं।

दादाश्री : जिसे जीवजंतु मारने हैं उसे वैसे संयोग मिल आते हैं और जिसे नहीं मारने उसे वैसे संयोग मिल आते हैं।

थोड़ा समय 'नहीं मारने हैं' ऐसा प्रयत्न करोगे तो संयोग बदलेंगे। दुनिया के नियम यदि समझो तो हल है। नहीं तो फिर मारने का रिवाज छूटता नहीं। तो फिर संसार का रिवाज टूटेगा नहीं। भूलचूक से मर जाए उसका प्रतिक्रमण कर लेना कि माफ़ी माँगता हूँ।

प्रश्नकर्ता : हम भी इस दैनिक जीवन में ये सारी दवाईयाँ छिड़ककर सब जीवजंतुओं को मारते हैं, तो उसका इफेक्ट अपने पर होता है?

दादाश्री : मारते हो उस घड़ी अंदर तुरन्त ही परमाणु बदल जाते हैं और आपके अंदर भी मर जाते हैं। जितना आप बाहर मारोगे उतना अंदर मरेगा। जितना बाहर जगत् है उतना अंदर जगत् है। इसलिए आपको जितना मारना हो उतना मारना, आपके अंदर भी मरते रहेंगे। जितना इस ब्रह्मांड में है उतना पिंड में है।

इतने सारे चोर होते हैं कि हम उनमें से बचे ही नहीं। हम कभी किसी की जेब काटने का, चोरी करने का विचार नहीं करते, इसलिए अपना वे काटते नहीं। इसलिए आप हिंसक के बदले अहिंसक रहोगे, तो हिंसा के संयोग ही आपको मिलेंगे नहीं ऐसा यह जगत् है। जगत् एक बार समझ लो तो निबेड़ा आए।

सहमति दे उसका गुनाह

प्रश्नकर्ता : ये बरसात में गाँव में मक्खियाँ अधिक हो जाती है, मच्छर अधिक हो जाते हैं, तो म्युनिसिपालिटीवाले या अपने घर में सब 'फ्लिट' छिड़कते हैं, तो वह पाप ही कहलाएगा न? पर ऐसा यदि न करें तो महामारी भयंकर फैल जाती है।

दादाश्री : ऐसा है न, यह तुझ में, और उस सरमुखत्यार ने बम्बगोले डाले उसमें फर्क क्या है? तू उनमें से ही छोटा सरमुखत्यार बना!

प्रश्नकर्ता : पर यह तो गाँव की बात हुई न! यह बरसात है, तो बरसात में सब तरफ गंदगी तो होती ही है न। तब मच्छर-मक्खी सभी हो जाते हैं। तो म्युनिसिपालिटी क्या करती है कि सब जगह पर दवाई छिड़कती है।

दादाश्री : म्युनिसिपालिटी करती है, उसमें हमें क्या लेना-देना? हमारे मन में वैसा भाव नहीं होना चाहिए। हमारे मन में ऐसा होना चाहिए कि ऐसा नहीं हो तो अच्छा।

प्रश्नकर्ता : तो म्युनिसिपालिटी के जो काम करनेवाले लोग हैं, जो ओहदे पर होते हैं, उन्हें दोष लगता है?

दादाश्री : नहीं। उन्हें भी लगता-करता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो किसे लगता है?

दादाश्री : वह तो सिर्फ करनेवाले ही हैं। उनसे कौन करवाता है? उनके ऑफिसर वगैरह सब।

प्रश्नकर्ता : तो ऑफिसर किसके लिए करते हैं?

दादाश्री : उनका कर्तव्य! पर अपने लिए नहीं।

प्रश्नकर्ता : पर हमने तो कम्प्लेन की, पत्र लिखकर नोटिस दिया।

दादाश्री : पर जिसे नहीं कहना हो वह नहीं कहे। जिसे नहीं करना हो वह कहेगा, 'भाई, मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे यह पसंद नहीं है।' तो फिर? तो खुद की जिम्मेदारी नहीं है। और जिसे पसंद है उसकी जिम्मेदारी है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए हर एक के खुद के भाव पर रहा?

दादाश्री : हाँ, खुद का भाव किसमें है? उतनी उसकी जोखिमदारी!

प्रश्नकर्ता : यह पानी की टँकी हो, उसमें चूहा मर गया या कबूतर मर गया, तो वह सारी साफसूफ करनी पड़ती है। साफसफाई करवाने के बाद उसमें दवाई छिड़कनी पड़ती है या फिर म्युनिसिपालिटी वाले को बुलवाकर दवाई छिड़कवाते हैं, ताकि सारे ही जीवजंतुओं का तो नाश हो न? तो वह पाप तो हुआ न? वह बंधन किसे पड़ा? करनेवाले को या करवानेवाले को?

दादाश्री : करनेवाले और करवानेवाले दोनों को जाता है। पर अपने भाव में नहीं होना चाहिए। अपना ऐसा अभिप्राय नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : गंदगी मिटाने का भाव है। क्योंकि गंदगी नहीं मिटे तब सभी मनुष्य पानी पीएँगे तो उन्हें नुकसान होगा।

दादाश्री : हाँ, पर वह तो दोष लगेंगे ही न! ऐसा है न, ऐसे दोष गिनने जाएँ न, तो इस जगत् में निरंतर दोष ही हुआ करते हैं।

इसलिए आपको किसी की चिंता नहीं करनी है। आप अपना सँभालो। सब सबकी सँभालो। हर एक जीव मात्र अपना-अपना मरण और बाकी सब लेकर आए हैं। इसीलिए तो भगवान ने कहा है कि कोई किसी को मार सकता नहीं है। पर यह ओपन मत करना, नहीं तो लोग दुरुपयोग करेंगे।

और घर में दस व्यक्ति हों और टंकी बिगड़ी है, उसे कौन साफ करवाने निकलेगा? जिसमें अहंकार हो वह निकलेगा, कि 'मैं कर दूँगा। वह आपका काम नहीं है।' इसलिए अहंकारी को सारा दोष जाता है।

प्रश्नकर्ता : पर वह उसके करुणा के भाव से करता है।

दादाश्री : करुणा हो या चाहे जो। और ये पाप भी बँधेंगे।

प्रश्नकर्ता : तो क्या करें? वह चाहे जैसा गंदा पानी पी लें?

दादाश्री : इसमें चले ऐसा ही नहीं है। वह अहंकार किए बिना रहेगा ही नहीं। और ऐसा कुछ नहीं है, आपको तो सही शुद्ध ही पानी मिलता रहेगा। कोई अहंकारी आपके लिए शुद्ध ही कर देगा। हाँ, इस दुनिया में हर एक चीज है। कोई चीज़ ऐसी नहीं कि जो न मिले। पर आपका पुण्य अटका हुआ है सिर्फ। आपका जितना अहंकार उतना अंतराय। अहंकार निर्मूल हुआ कि सभी वस्तुएँ आपके घर! इस जगत् की कोई चीज़ आपके घर न हो वैसा नहीं रहेगा! अहंकार ही अंतराय है।

पढ़ाई में हिंसा?

प्रश्नकर्ता : यह एग्रीकल्चर कॉलेज में पढ़ती है। स्टुडन्ट है यहाँ पर, तो कहता है, 'हमारे यहाँ कीट-पतंगे पढ़ने के लिए पकड़ने पड़ते हैं और उन्हें मारना पड़ता है, तो उसमें पाप बँधता है क्या? पकड़ें नहीं तो हमें मार्क्स नहीं मिलते परीक्षा में, तो हमें क्या करना चाहिए?'

दादाश्री : तो भगवान को रोज़ प्रार्थना करो एक घंटा कि भगवान यह मेरे भाग्य में ऐसा कहाँ से आया, लोगों को सभी को कहीं ऐसा होता है?! तेरे हिस्से में आया है तो भगवान से प्रार्थना करना कि 'हे भगवान, क्षमा माँगता हूँ। अब ऐसा नहीं आए ऐसा करना।'

प्रश्नकर्ता : मतलब, इसमें जो प्रेरणा देनेवाले टीचर होते हैं न, वे हमें ऐसा प्रेरित करते हैं कि आप इन कीट-पतंगों को पकड़ो और इस तरह से एल्बम बनाओ, तो उन्हें कोई पाप नहीं?

दादाश्री : उनके हिस्से में आता है, प्रेरणा दे उसे साठ प्रतिशत और करनेवाले को चालीस प्रतिशत!

प्रश्नकर्ता : यह कोई भी वस्तु जो हो रही है वह व्यवस्थित के नियम के अनुसार वह ठीक नहीं मानी जाती? वे निमित्त बने और उन्हें करने का आया। तो फिर उनके हिस्से में पाप क्यों रहे?

दादाश्री : पाप तो इसलिए ही होता है कि ऐसा काम अपने हिस्से में नहीं होना चाहिए, फिर भी अपने हिस्से में ऐसा आया? बकरे काटने का भाग्य में आए तो अच्छा लगेगा?

प्रश्नकर्ता : अच्छा तो नहीं लगेगा। पर दादा, करना ही पड़े ऐसा हो तो? अनिवार्य रूप से करना ही पड़े, छुटकारा ही न हो, तब क्या?

दादाश्री : करना पड़े तो.... पछतावे सहित करना पड़े, तब ही काम का है। एक घंटे पछतावा करना पड़ेगा रोज़, एक कीटक बना दे, देखें? फ़ॉरेन के साइन्टिस्ट बना देंगे एक कीटक?

प्रश्नकर्ता : ना, वह तो संभव ही नहीं न दादा!

दादाश्री : तो फिर बना नहीं सकते तो फिर मार किस तरह सकते हैं?

उन लोगों को सबको प्रार्थना करनी चाहिए भगवान से, कि हमारे हिस्से में यह कहाँ से आया, खेतीबाड़ी का धंधा कहाँ से

आया.... खेतीबाड़ी में तो निरी हिंसा ही है पर ऐसी नहीं, यह तो खुली हिंसा है।

प्रश्नकर्ता : बहुत अच्छा नमूना लेकर आएँ मारकर, तब वापिस खुश होते हैं कि मैं कैसा मारकर लाया, कितना अच्छा नमूना मिला। उसके अधिक मार्क्स मिलते हैं। कितना अच्छा मैंने पकड़ा!

दादाश्री : खुश होता है न! वहाँ पर उतना ही कर्म लगेगा, उसका फल आएगा वापिस, जितने खुश हुए उतनी ही कड़वाहट भोगनी पड़ेगी।

अलग हिसाब पाप के.....

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति ने घास तोड़ी, दूसरे व्यक्ति ने पेड़ काटा, तीसरे व्यक्ति ने मच्छर मारा, चौथे व्यक्ति ने हाथी मारा, पाँचवे व्यक्ति ने मनुष्य को मारा। अब इन सबमें जीवहत्या तो हुई ही पर उसके पाप का फल अलग-अलग है न?

दादाश्री : अलग-अलग। ऐसा है न, तिनको की कोई क़ीमत ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : पर उसमें आत्मा तो है न?

दादाश्री : वह तो है। पर वह खुद जो भोगता है न, वह बेभानअवस्था में भोगता है न!

प्रश्नकर्ता : मतलब सामनेवाले के भुगतान के अनुसार पाप है?

दादाश्री : सामनेवाले का दु:ख कितना है, उसके अनुसार हमें पाप लगता है।

प्रश्नकर्ता : बंगले के आसपास खुद अपना गार्डन बनाता है।

दादाश्री : उसमें आपत्ति नहीं है। उतना टाइम अपना बेकार जाता है, इसलिए मना किया है। उन जीवों के लिए मना नहीं किया।

प्रश्नकर्ता : पर हम निमित्त बनें कहलाते हैं न।

दादाश्री : निमित्त में आपत्ति नहीं है। जगत् निमित्तरूप ही है। उन एकेन्द्रिय जीवों को कोई दुःख नहीं देते हम। वह सब चलता ही रहता है। एकेन्द्रिय जीव की जिनकी चिंता करनी नहीं है, उनकी उलझन डाल दी। पर जान-बूझकर रास्ते चलते पेड़ के पत्ते बिना काम के तोड़ना मत, अनर्थकारी क्रियाएँ मत करना। और दातुन की ज़रूरत हो तो आप पेड़ से कहना कि, 'मुझे एक टुकड़ा चाहिए।' ऐसे माँग लेना।

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति फुटपाथ पर चल रहा हो, दूसरा व्यक्ति घास पर चल रहा हो। फर्क तो है ही न?

दादाश्री : ठीक है पर उसमें बहुत लंबा अंतर नहीं है। यह तो लोगों ने उल्टा डाल दिया है। बड़ी बात रह गई और छोटी बातें डाली। लोगों के साथ चिढ़ना उसे बड़ी हिंसा कहा है। सामनेवाले को दुःख होता है न!

नियम, खेती में पुण्य-पाप का...

प्रश्नकर्ता : ये किसान खेती करते हैं उसमें पाप है?

दादाश्री : सब ओर पाप है। किसान खेती करे उसमें भी पाप है और ये अनाज के दानों का व्यापार करते हैं, वे सभी पाप हैं। दानों में जीव पड़ते हैं या नहीं पड़ते? और लोग जीवजंतुओं के साथ बाजरा बेचते हैं। अरे, जंतुओं के भी पैसे लिए और वे खाए!

प्रश्नकर्ता : पर खेती करनेवाले को एक पौधे को बड़ा करना पड़ता है और दूसरे पौधे को उखाड़ना पड़ता है। तब भी उसमें पाप का भार है कोई?

दादाश्री : है ही न!

प्रश्नकर्ता : तो किसान खेती किस तरह करे?

दादाश्री : वह तो ऐसा है न, एक कार्य करो, उसमें पुण्य और पाप दोनों समाए हुए होते हैं। यह किसान खेती करते हैं, वे दूसरे पौधे को उखाड़ डालते हैं और इस काम के पौधे को रखते हैं, यानी उसे पालते-पोसते हैं, उसमें उसे बहुत पुण्य बँधता है और जिसे निकाल देते हैं, उसका उसे पाप बँधता है। यह पाप पच्चीस प्रतिशत बँधता है और पुण्य उसे पचहतर प्रतिशत बँधता है। तब फिर पचास प्रतिशत का फायदा हुआ न!

प्रश्नकर्ता : तो वह पाप और पुण्य 'प्लस-माइनस' हो जाते हैं?

दादाश्री : ना। वह 'प्लस-माइनस' नहीं किया जाता। बही में तो दोनों लिखे जाते हैं। 'प्लस-माइनस' हो जाता हो न, तब तो किसी के यहाँ ज़रा भी दुःख नहीं होता। तब तो कोई मोक्ष में भी नहीं जाता। वह तो कहता, 'यहाँ अच्छा है, कोई दुःख नहीं।' लोग तो बहुत पक्के होते हैं। पर ऐसा कुछ होता नहीं।

और जगत् पूरा तो पाप में ही है न और पुण्य में भी है। पाप के साथ-साथ पुण्य भी होते हैं। पर भगवान ने क्या कहा है कि लाभालाभ का व्यापार करो।

स्पेशल प्रतिक्रमण, किसानों के लिए

प्रश्नकर्ता : आपकी किताब में पढ़ा था कि 'मन-वचन-काया से कोई जीव को किंचित् मात्र दुःख न हो' ऐसा पढ़ा, पर एक तरफ हम किसान रहे, फिर तम्बाकू की फसल उगाएँ तब हमें ऊपर से हर एक पौधे की कोंपल, मतलब उसकी गरदन तोड़ ही डालनी पड़ती है। तो इससे उसे दुख तो हुआ न! उसका पाप तो लगता है न? ऐसे लाखों पौधों की गरदन कुचल डालते हैं। तो इस पाप का निवारण किस तरह करें?

दादाश्री : वह तो अंदर मन में ऐसा होना चाहिए कि अरे यह काम कहाँ से हिस्से में आया? बस इतना ही। पौधे की कोंपल निकाल देनी। परन्तु मन में 'यह काम कहाँ से हिस्से में आया',

ऐसा पश्चाताप होना चाहिए। 'ऐसा नहीं करना चाहिए' वैसा मन में होना चाहिए, बस।

प्रश्नकर्ता : पर यह पाप तो होने ही वाला है न?

दादाश्री : वह तो है ही। वह देखना नहीं है, वह आपको देखना नहीं है। हुआ करता है वह पाप देखना नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिए ऐसा आपको निश्चित करना है, निश्चय करना चाहिए। ऐसा काम कहाँ मिला? दूसरा अच्छा काम मिला होता तो हम ऐसा करते नहीं। वैसा पश्चाताप नहीं होता। ऐसा नहीं जाना हो न, तब तक पश्चाताप नहीं होता। खुश होकर पौधे को फेंक देता है। हमारे कहे अनुसार करना न, आपकी सभी जिम्मेदारी हमारी। पौधा फेंक दो उसका हर्ज नहीं है, पश्चाताप होना चाहिए कि यह कहाँ से आया मेरे हिस्से में?

प्रश्नकर्ता : समझा।

दादाश्री : इन किसानों से अधिक तो व्यापारी पाप करते हैं और व्यापारियों से अधिक ये घर बैठे रहते हैं, वे बहुत पाप करते हैं मुए। पाप तो मन से होता है, शरीर से पाप होता नहीं। आपको बात समझनी है। इन दूसरे लोगों को समझने की ज़रूरत नहीं है। आपको अपने लायक समझ लेनी है। दूसरे लोग जो समझते हैं वही ठीक है।

प्रश्नकर्ता : कपास में दवाई छिड़कनी पड़ती है तब क्या करें? उसमें हिंसा तो होती ही है न?

दादाश्री : आखिर में जो-जो कार्य करने पड़ते हैं वे प्रतिक्रमण करने की शर्त पर करने चाहिए।

आपको इस संसार व्यवहार में किस तरह चलना वह नहीं आता। वह हम आपको सिखलाते हैं। उससे नये पाप बँधेगे नहीं।

खेत में तो खेतीबाड़ी करें, इसलिए पाप बँधते ही हैं। पर वे बँधते हैं उसके साथ हम आपको दवाई देते हैं कि ऐसा बोलना। उससे

पाप कम हो जाएँगे। हम पाप धोने की दवाई देते हैं। दवाई नहीं चाहिए? खेत में गए इसलिए जोतो-करो, उसमें पाप तो होंगे ही। अंदर कितने ही जीव मारे जाते हैं। यह गन्ना काटते हो तो पाप नहीं कहलाता? वे जीव ही हैं न बेचारे? पर उसका क्या करना वह हम आपको समझाते हैं, जिससे आपको दोष कम लगे और भौतिक सुख अच्छी तरह भोगो।

खेतीबाड़ी में जीवजंतु मरे, उसका दोष तो लगता है न? इसलिए खेतीबाड़ीवालों को हररोज़ पाँच-दस मिनट भगवान के पास प्रार्थना करनी चाहिए कि यह दोष हुआ उसकी माफ़ी माँगता हूँ। किसान हो उसे कहें कि तू यह काम करता है, उसमें जीव मरते हैं। उसका इस तरह से प्रतिक्रमण करना। तू जो गलत करता है, उसमें मुझे आपत्ति नहीं। पर उसका तू इस तरह प्रतिक्रमण कर।

स्वरूपज्ञानी को पुण्य-पाप छूते नहीं

प्रश्नकर्ता : जंतुनाशक दवाई हम बनाते हैं और फिर वे खेत में छिड़कते हैं, उसमें कितने ही जीव मर जाते हैं। तो फिर उसमें पाप लगता है या नहीं लगता? फिर वह दवाई बनानी, वह पाप कहलाएगा या नहीं?

दादाश्री : हाँ। क्योंकि वह दवाई जीवों को मारने के उद्देश्य से ही बनती है। दवाई लाते हैं, वह भी जीवों को मारने के उद्देश्य से ही लाते हैं और दवाई डालते हैं वह जीवों को मारने के उद्देश्य से ही डालते हैं। इसलिए सारा पाप ही है।

प्रश्नकर्ता : पर उसमें हेतु ऐसा है कि फसल अधिक अच्छी हो, अधिक फसल हो।

दादाश्री : ऐसा है, यह फसल किस आधार पर होती है, किसान किस आधार पर जोतते हैं, किस आधार पर बुआई करते हैं, वह सब किसके आधार पर चलता है, वह मैं जानता हूँ। यह सब नहीं जानने से लोगों के मन में ऐसा होता है कि 'यह तो मेरे आधार

पर चल रहा था। यह तो मैंने दवाई छिड़की इसलिए बचा।' अब यह आधार देना भयंकर पाप है। और निराधार हुआ कि वह सब गिर जाता है।

प्रश्नकर्ता : तब फिर पुरुषार्थ कहाँ गया?

दादाश्री : पुरुषार्थ तो, क्या होता है उसे देखना-जानना वही पुरुषार्थ है, दूसरा कुछ नहीं। दूसरा, मन के विचार आते हैं वे 'फाइल' हैं। उन्हें तो आपको देखना है। दूसरे बखेड़े में उतरना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह खेती करनी चाहिए या नहीं करनी चाहिए?

दादाश्री : खेती में आपत्ति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पर उस पाप का भार बढ़े उसका क्या?

दादाश्री : ऐसा है, इस ज्ञान के बाद आपको तो पाप अब छूता नहीं न! आप 'खुद' अब चंदूभाई नहीं रहे। आप चंदूभाई हो तब तक पाप लगता है। 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा पक्का है आपको?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : तब फिर पाप कहाँ से अड़े? यह चार्ज ही नहीं होगा न! जितनी खेती आई हो उतने का निकाल करना है। वह 'फाइल' है। आ पड़ी, उस 'फाइल' का समभाव से निकाल करना है।

परन्तु यदि मेरे कहे अनुसार 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कभी भी चूके नहीं, तो चाहे जितनी दवाई डालेगा तब भी उसे छूटेगा नहीं। क्योंकि 'खुद' 'शुद्धात्मा' है। और दवाई डालनेवाला कौन? चंदूभाई है। और आपको जो दया आती हो तो 'आप' 'चंदूभाई' हो जाओ।

प्रश्नकर्ता : ऐसी दवाई बनाने से, बेचने से, खरीदने से, डालने से उसे कर्म का बंध होता है या नहीं?

दादाश्री : हाँ, पर वह तो दवाईयों के कारखाने जिन्होंने बनाए

हैं वे सब मुझे पूछते हैं कि 'दादा, अब हमारा क्या होगा?' मैंने कहा, 'मेरे कहे अनुसार रहोगे तो आपको कुछ भी होनेवाला नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : तब फिर उसका अर्थ ऐसा हुआ कि शुद्धात्मा भाव से हिंसा की जा सकती है न?

दादाश्री : हिंसा करने की बात ही नहीं है। शुद्धात्मा भाव में हिंसा होती ही नहीं। करने का कुछ भी नहीं होता न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर आचारसंहिता की दृष्टि से दोष नहीं कहलाता?

दादाश्री : आचारसंहिता की दृष्टि से दोष नहीं कहलाता। आचारसंहिता कब होती है? कि आप चंदूभाई हो तब तक आचारसंहिता। तो उस दृष्टि से दोष ही कहा जाएगा। परन्तु इस 'ज्ञान' के बाद अब आप तो चंदूभाई नहीं हो, शुद्धात्मा हो गए और वह आपको निरंतर ध्यान में रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा निरंतर हमें ध्यान रहना, वह शुक्लध्यान है। 'मैं चंदूभाई हूँ' वह अहंकारी ध्यान है।

अपने महात्मा इतने हैं, पर किसी ने दुरुपयोग किया नहीं है। वैसे मुझे पूछते ज़रूर हैं, और फिर कहते हैं कि, 'हम काम बंद कर दें?' मैंने कहा, 'ना। काम बंद हो जाए तो बंद होने देना और बंद नहीं हो तो चलने देना।'

हिंसक व्यापार

प्रश्नकर्ता : यह जो काम पहले करते थे, जंतुनाशक दवाईयों का व्यापार, उस समय उसे दिमाग़ में बात नहीं बैठती थी कि यह कर्म के हिसाब से जो व्यापार मिला है, उसमें क्या हर्ज है? किसी को माँस बेचने का हो तो उसमें उसका क्या दोष? उसके तो कर्म के हिसाब में जो था वह ही आया न?

दादाश्री : ऐसा है न, फिर अंदर शंका नहीं पड़ी हो तो चलता रहता। परन्तु यह शंका पड़ी, वह उसके पुण्य के कारण। जबरदस्त

पुण्य कहलाए। नहीं तो यह जड़ता आ जाती। वहाँ कोई जीव मरे वे कम नहीं हुए, आपके ही जीव अंदर मर जाते हैं और जड़ता आती है। जागृति बंद हो जाती है, डल हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : अभी भी पुराने मित्र मुझे मिलते हैं सभी, तो सभी को ऐसा कहता हूँ कि इसमें से निकल जाओ और उन्हें पचास उदाहरण बताए कि देखो इतना ऊँचा चढ़ा हुआ नीचे गिर गया। पर फिर सभी को नहीं बैठता है दिमाग़ में! फिर ठोकर खाकर सभी वापिस निकल गए।

दादाश्री : यानी कितना पाप हो, तब हिंसावाला व्यापार हाथ में आता है। ऐसा है न, इस हिंसक काम में से छूट जाएँ तो उत्तम कहलाए। दूसरे बहुत काम-धंधे होते हैं। अब एक व्यक्ति मुझे कहता है, मेरे सभी व्यापारों में से यह किराना का व्यापार बहुत फायदेवाला है। मैंने उसे समझाया कि जीवजंतु पड़ जाते हैं तब क्या करते हो, ज्वार में और बाजरी में सबमें? तब कहता है, वह तो हम क्या करें? हम छान डालते हैं। सबकुछ करते हैं। उसकी सँभाल करते हैं। पर वे रह जाएँ उसमें हम क्या करें? मैंने कहा, 'रह जाएँ उसका हमें हर्ज नहीं है, पर उन जंतुओं के पैसे आप लेते हो? तोल में? हाँ, भले ही दो तोला!' अरे यह तो कोई लाइफ है? उन जीवों का तोल होता है एकाध तोला! उस तोल के पैसे लिए।

उत्तम व्यापार, जौहरी का

मतलब पुण्यशाली को कौन-सा व्यापार मिलता है? जिसमें कम से कम हिंसा हो वह व्यापार पुण्यशाली को मिल जाता है। अब ऐसा व्यापार कौन-सा? हीरे-माणिक का, कि जिसमें कोई मिलावट नहीं है। पर उनमें भी जो कि आजकल चोरियाँ ही हो गई हैं। परन्तु जिसे मिलावट बिना करना हों तो कर सकता है। उसमें जीव मरते नहीं, कुछ उपाधी नहीं। और फिर दूसरे नंबर पर सोने-चाँदी का। और सबसे अधिक हिंसावाला व्यापार कौन-सा?

यह कसाई का। फिर यह कुम्हार का। वे भट्ठी जलाते हैं न! इसलिए सब हिंसा ही है।

प्रश्नकर्ता : चाहे किसी भी चिंता का फल तो मिलता ही है न? हिंसा का फल तो भुगतना ही है न? चाहे फिर भावहिंसा हो या द्रव्यहिंसा हो?

दादाश्री : वे लोग भुगतते ही हैं न! सारा दिन तड़फड़ाहट और तड़फड़ाहट.....

जितने हिंसक व्यापारवाले हैं न, वे व्यापारी सुखी नहीं दिखते। उनके मुँह पर तेज नहीं आता कभी भी। जमीन का मालिक हल नहीं चलाता हो, उसे बहुत छूता नहीं है। जोतनेवाले को छूता है, इसलिए वह सुखी नहीं होता। पहले से नियम है यह सब। इसलिए दिस इज़ बट नेचरल। ये कामधंधे मिलना और ये सब नेचुरल है। यदि आप बंद कर दो न, तब भी वह बंद हो ऐसा नहीं है। क्योंकि उसमें कुछ चले ऐसा नहीं है। नहीं तो इन सभी लोगों के मन में विचार आए कि 'लड़का सेना में जाए और मर जाए तो मेरी बेटी विधवा हो जाएगी।' तब तो हमारे देश में वैसा माल पैदा ही नहीं हो। परन्तु नहीं, वह माल हर एक देश में होता ही है। कुदरती नियम ऐसा ही है। इसलिए यह सब कुदरत ही पैदा करती है। इसमें कुछ नया होता नहीं है। कुदरत का इसके पीछे हाथ है। इसलिए बहुत वैसा रखना मत।

संग्रह, वह भी हिंसा

प्रश्नकर्ता : व्यापारी नफाखोरी करते हैं, कोई उद्योगपति या व्यापारी मेहनत के सामने कम मेहनताना देते हैं अथवा कोई मेहनत बिना की कमाई हो, तो वह हिंसा कहलाती है?

दादाश्री : वह सब हिंसा ही है।

प्रश्नकर्ता : अब वह मुफ्त की कमाई करके धर्मकार्य में पैसे खर्च करे, तो वह किस प्रकार की हिंसा कहलाएगी?

दादाश्री : जितना धर्मकार्य में खर्च किया, जितना त्याग कर गया, उतना कम दोष लगा। जितना कमाया था, लाख रुपये कमाया था, अब उसने अस्सी हज़ार का अस्पताल बनवाया तो उतने रुपयों की उसकी जिम्मेदारी नहीं रही। बीस हज़ार की ही जिम्मेदारी रही। यानी अच्छा है, गलत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लोग लक्ष्मी का संग्रह करके रखते हैं वह हिंसा कहलाएगी या नहीं?

दादाश्री : हिंसा ही कहलाएगी। संग्रह करना, वह हिंसा है। दूसरे लोगों के काम नहीं लगती न!

प्रश्नकर्ता : लक्ज़ुरियस लाइफ जीने के लिए संहार करके अधिक लक्ष्मी प्राप्त करें तो वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : वह गुनाह ही कहलाएगा न! जितना गुनाह हो उतना हमें दंड मिलेगा। जितने कम परिग्रह से जीया जा सके, वह उत्तम जीवन है।

सामना, पर शांति से

प्रश्नकर्ता : चोरी नहीं करनी, हिंसा नहीं करनी, ऐसा आप कहते हो। तो कोई व्यक्ति अपनी वस्तु चोरी कर ले, वह हमारे साथ धोखा करे। तब हमें उसका सामना करना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : सामना करना ही चाहिए। पर वह हमें ऐसा सामना करना नहीं है कि अपना मन बिगड़ जाए। खूब धीरे से हम कहें कि, 'भाई, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है कि यह सब ऐसा कर रहे हो?' और अपना सौ रुपये का चुरा गया हो और हम उस पर गुस्सा हो जाएँ तो हमने उन सौ रुपयों के लिए अपना पाँच सौ रुपयों का नुकसान किया। इसलिए ऐसा सौ रुपये के लिए पाँच सौ रुपयों का नुकसान हमें नहीं करना है। इसलिए शांति से बात करनी चाहिए। गुस्सा नहीं करना चाहिए।

हिंसा का विरोध, बचाए अनुमोदना से...

प्रश्नकर्ता : मानसिक दु:ख देना, किसी को धोखा देना, विश्वासघात करना, चोरी करना बगैरह सूक्ष्म हिंसा मानी जाती है?

दादाश्री : वह सब हिंसा ही है। स्थूल हिंसा से भी अधिक यह हिंसा बड़ी है। उसका फल बहुत बड़ा आता है। किसी को मानसिक दु:ख देना, किसी को धोखा देना, विश्वासघात करना, चोरी करनी वह सब रौद्रध्यान में जाता है। और रौद्रध्यान का फल नर्कगति है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु उस सूक्ष्म हिंसा को ही महत्व देकर बड़ी द्रव्यहिंसा, गूंगे प्राणियों के प्रति क्रूरता, हत्या और उनके शोषण से या हिंसा से प्राप्त की गई सामग्रियाँ उपयोग करना या उन्हें प्रोत्साहन देकर बड़ी हिंसा के प्रति उदासीनता रखी जाए तो वह उचित माना जाएगा?

दादाश्री : वह उचित नहीं माना जाएगा। उसका विरोध तो होना ही चाहिए। विरोध नहीं तो आप उसकी अनुमोदना कर रहे हो, दो में से एक जगह पर हो। यदि विरोध नहीं होता तो अनुमोदना करते हो। इसीलिए चाहे जो हो या ज्ञानी हो, परन्तु उन्हें विरोध प्रदर्शित करने की ज़रूरत है। नहीं तो अनुमोदना में चले जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : हिंसा करनेवाला कोई भी पशु-पक्षी या चाहे जो हो, तो उनके उदय में हिंसा आई हुई होती है, तो उसे रोकने के लिए हम निमित्त बन सकते हैं?

दादाश्री : चाहे जिनके उदय में वह आया हो और आप यदि रोकने के निमित्त नहीं बनो तो आप हिंसा की अनुमोदना करते हो। इसलिए आपको रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। और चाहे जो उदय हो, परन्तु आपको तो रोकने का प्रयत्न करना ही चाहिए।

जैसे रास्ते में कोई जा रहा हो और उसके कर्म के उदय से वह टकराया और पैर में चोट लग गई, और आप वहाँ से जा रहे हों, तो आपको उतरकर और अपने कपड़े से उसे पट्टा बाँधना चाहिए।

गाड़ी में ले जाकर रख आना चाहिए। भले उसके कर्म के उदय से ऐसा हुआ हो, पर आपके भाव बताने चाहिए। नहीं तो आप उसके विरोधी भाव से बँध जाओगे और मुक्त नहीं हो पाओगे। यह जगत् ऐसा नहीं कि मुक्त कर सके।

प्रश्नकर्ता : अध्यात्म में रुचि रखनेवाले के लिए हिंसा रोकने का प्रयत्न करना ज़रूरी माना जाता है क्या? यदि ज़रूरी होता हो तो उस बारे में आप मार्गदर्शन-उपदेश-सलाह देंगे?

दादाश्री : अध्यात्म में रुचि रखते हों और हिंसा रोकने का प्रयत्न नहीं करें वे तो हिंसा की प्रेरणा की कहलाएगी। हिंसा रोकने के प्रयत्न न करें, तो हिंसा की अनुमोदना की कहलाएगी। इसलिए चाहे जो अध्यात्म हो, परन्तु हिंसा रोकने का प्रयत्न तो होना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ऐसे संयोगों में बड़ी द्रव्यहिंसा का निवारण किसलिए नहीं सूझता होगा?

दादाश्री : उस द्रव्यहिंसा के निवारण की खास ज़रूरत है। उसके लिए हम दूसरे प्रयत्न करें, अच्छी तरह सभी इकट्ठे होकर और मंडल की रचना करें और गवर्नमेन्ट में भी अपने चुने हुए व्यक्तियों को भेजें तो बहुत फल मिलेगा। सभी को भाव करने की ज़रूरत है, और मज़बूत भाव करने की ज़रूरत है, प्रोत्साहन देने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु दादा, आख़िर में तो यह सब हिसाब ही है न?

दादाश्री : हाँ, हिसाब है। पर उसे हिसाब कहना है तो वह हो जाने के बाद कहलाएगा। हिसाब कहें तो सब बिगड़ जाएगा। हमारे गाँव में साधु-बाबा आते हों और बच्चों को उठाकर ले जाते हों तब हम कहते हैं न कि पकड़ो इन लोगों को और रोक दो! इसलिए जैसे खुद के बच्चे को कोई ले जाए, उठा जाए तो कितना दुख होगा? उसी तरह ये गायें-भैंसें वे सब कटते हैं, उनके लिए मन में बहुत ही दुख रहना चाहिए, और उनके सामने विरोध होना

चाहिए। नहीं तो वह काम सफल ही नहीं होगा न! बैठे रहने की ज़रूरत ही नहीं। उसे कर्म का उदय मानें, पर भगवान भी ऐसा नहीं मानते थे। भगवान भी विरोध प्रदर्शित करते थे। इसलिए हमें विरोध प्रदर्शित करना चाहिए, एकता सर्जित करनी चाहिए और उसका सामना करना चाहिए। इसमें तो कोई हिंसा के विरोधी नहीं हैं, पर अहिंसक भाव है यह तो!

कृष्ण का गोवधर्न - गायों का वर्धन

कृष्ण भगवान के काल में हिंसा बहुत बढ़ गई थी। तब कृष्ण भगवान ने फिर क्या किया? गोवर्धन पर्वत उठाया, एक उँगली से। अब गोवर्धन पर्वत उँगली पर उठाया, वह शब्द स्थूल में रह गया। परन्तु लोग उनकी सूक्ष्म भाषा समझे नहीं। गोवर्धन मतलब गायों का वर्धन कैसे हो, ऐसा सब जगह-जगह आयोजन किया और गौरक्षा का आयोजन किया। वर्धन का और रक्षा का दोनों आयोजन किए। क्योंकि हिन्दुस्तान के लोगों का मुख्य जीवन ही इस पर आधारित है। इसलिए बहुत ही हिंसा बढ़ जाए न तब दूसरा सब छोड़कर पहले यह सँभालो। और जो हिंसक जानवर हैं न, उनके लिए तो हमें कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। वे जानवर खुद ही हिंसक हैं। उनके लिए आपको कुछ करने की ज़रुरत नहीं है। उन्हें कोई मारता भी नहीं न और वे खाए भी नहीं जाते न! इस बिल्ले को कौन खाए? कुत्ते को कौन खा जाए? कोई नहीं खाए और किसी से खाया भी नहीं जाए। इसलिए यह अकेला ही, गोवर्धन और गौरक्षा, दो वस्तुएँ ही पहले पकड़ने जैसी है।

गोवर्धन के बहुत उपाय करने चाहिए। कृष्ण भगवान ने एक उँगली के ऊपर गोवर्धन किया न, वह बहुत ऊँची चीज़ की थी। उन्होंने जगह-जगह गोवर्धन की स्थापना की थी और गौशालाएँ शुरू कर दी। हज़ारों गायों का पोषण हो ऐसा किया। गोवर्धन और गौरक्षा, ये दोनों स्थापित किए। रक्षा की इसलिए रुक गया। और फिर घर-घर घी, दूध सभी चीज़ें मिला करेंगी न! इसलिए गायों को बचाने के

बदले गायों की आबादी किस प्रकार बढ़े, उसके लिए बहुत कुछ करने की ज़रूरत है।

गायें रखने से इतने फायदे हैं, गायों के दूध में इतना फायदे हैं, गायों के घी में इतने फायदे हैं, वह सब ओपन किया जाए और अनिवार्य तो नहीं परन्तु मरज़ी से, लोगों को खुद समझाकर और हर एक गाँव में गायों का रिवाज़ किया जाए तो गायें बहुत बढ़ जाएगी। पहले सब जगह गौशाला रखते थे, वहाँ हज़ार-हज़ार गायें रखते थे। इसलिए गायें बढ़ाने की ज़रूरत है। यह तो गायें बढ़ती नहीं और एक तरफ यह चलता रहता है। पर यह तो किसी को भी हमसे ना नहीं कहा जा सकता! ना कहे तो गुनाह कहलाता है। और कोई थोड़े ही गलत करता है? बचाता है न!

प्रश्नकर्ता : हम गायें छुड़वाते नहीं, परन्तु आने से रोकते हैं।

दादाश्री : हाँ, आने से रोकते रहो। उसके मूल मालिक को समझाओ कि इस तरह मत करना। अभी तो गोवर्धन और गौरक्षा, पहले ये दो नियम पकड़ो। दूसरे सब सेकन्डरी! यह कम्प्लीट हो जाएँ, फिर दूसरे।

इसलिए यह गोवर्धन और गौरक्षा, ये दो कृष्ण भगवान ने ज्यादा पकड़ रखा था। और गोवर्धन करनेवाले गोप और गोपी। गोप मतलब गौ पालन करनेवाले!

प्रश्नकर्ता : गोवर्धन, यह बात बहुत नयी ही मिली।

दादाश्री : हाँ, बातें हैं ही सब। पर यदि उनका विवरण हो तब काम का। बाकी तो बातें सब होती हैं ही और सच्ची ही होती है। परन्तु ये लोग फिर उसे स्थूल में ले गए। कहेंगे, 'गोवर्धन पर्वत उठाया।' इसीलिए वे फ़ॉरेन के साइन्टिस्ट कहेंगे, 'पागल जैसी है यह बात, पर्वत उठाया जाता होगा किसी से?' उठाया, तो हिमालय क्यों नहीं उठाया? और फिर तीर लगने से क्यों मर गए? पर ऐसा नहीं है।

गोवर्धन उन्होंने बहुत सुंदर तरीके से किया था। क्योंकि उस समय में हिंसा बहुत बढ़ गई थी, जबरदस्त हिंसा बढ़ गई थी। क्योंकि मुस्लिम अकेले हिंसा करते हैं, ऐसा नहीं है। हिन्दुओं में कुछ ऊपर की क्वॉलिटी ही हिंसा नहीं करती, दूसरी सभी प्रजा हिंसा करनेवाली है।

हिंसक भाव तो नहीं ही होना चाहिए न! मनुष्य को अहिंसक भाव तो होना ही चाहिए न! अहिंसा के लिए जीवन खर्च कर डालना, वह अहिंसक भाव कहलाता है।

क्या पूजा के पुष्प में पाप?

प्रश्नकर्ता : मंदिर में पूजा करने के लिए फूल चढ़ाने में पाप है या नहीं?

दादाश्री : मंदिर में भगवान की पूजा करने में फूल चढ़ाए जाते हैं, उसे दूसरी दृष्टि से देखना है। फूल तोड़ना, वह गुनाह है। फूल मोल लेना, वह भी गुनाह है। पर दूसरी दृष्टि से देखते हुए उसमें लाभ है। कौन-सी दृष्टि, वह मैं आपको समझाऊँ।

आज कुछ लोग मानते हैं कि फूल में महादोष है और कुछ लोग फूल को भगवान पर चढ़ाते हैं। अब उसमें खरी हक़ीक़त क्या है? यह वीतरागों का मार्ग जो है, वह लाभालाभ का मार्ग है। दो फूल गुलाब के तोड़कर लाया, वह उसने हिंसा तो की। उसकी जगह पर से तोड़ा इसलिए हिंसा तो हुई ही है। और वह फूल खुद के लिए काम में नहीं लेता। पर वह फूल भगवान पर चढ़ाए या फिर ज्ञानी पुरुष पर चढ़ाए, वह द्रव्यपूजा हुई कहलाएगी। अब यह हिंसा करने के लिए फाईव परसेन्ट का दंड करो और भगवान पर फूल चढ़ाए तो फोर्टी परसेन्ट प्रोफिट दो या फिर ज्ञानी पुरुष पर फूल चढ़ाएँ तो थर्टी परसेन्ट प्रोफिट दो। फिर भी पच्चीस प्रतिशत बचे न इसलिए लाभालाभ के व्यवहार के लिए है यह सारा जगत्। लाभालाभ का व्यापार करना चाहिए। और यदि लाभ कम होता हो और अलाभ होता हो तो वह

बंद कर दो। परन्तु यह तो अलाभ से अधिक लाभ होता है। पर तू फूल चढ़ाएगा नहीं, तो तेरा व्यापार बंद हो गया।

पुष्प पंखुड़ी जहाँ दुख पाए...

प्रश्नकर्ता : अभी तक जो पुष्प तोड़े होंगे, तो उनके कोई पाप दोष लगे होंगे?

दादाश्री : अरे, पुष्प एक हज़ार वर्ष तोड़े और एक ज़िन्दगी लोगों के साथ या घर में कषाय करे, घर में कलह करे, तो उससे अधिक इन कषायों का दोष बढ़ जाता है। इसलिए कलह पहले बंद करने का कहा है भगवान ने। पुष्पों का तो कोई हर्ज नहीं। फिर भी पुष्प ज़रूरत न हो तो नहीं तोड़ने चाहिए। ज़रूरत मतलब देवताओं को चढ़ाएँ तो हर्ज नहीं है। शौक के लिए नहीं तोड़ने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : परन्तु ऐसा कहते हैं न, *'पुष्प पाँखड़ी ज्यां दुभाय जिनवरनी नहीं त्यां आज्ञा'* (पुष्प पंखुड़ी जहाँ दुख पाए, जिनवर की नहीं वहाँ आज्ञा)।

दादाश्री : वह तो कृपालुदेव ने कहा है। तीर्थंकरों ने लिखा था, फिर कृपालुदेव ने तीर्थंकर के शब्द लिखे हैं। पर वह तो कहाँ पर? कि जिसे इस संसार की कोई चीज़ नहीं चाहिए, ऐसी श्रेणी उत्पन्न हो तब! और आपको तो अभी यह बुशशर्ट पहनना है न?

प्रश्नकर्ता : वह भी इस्त्रीवाला!

दादाश्री : और वह भी फिर इस्त्रीवाला! इसलिए इस संसार के लोगों को तो हर एक चीज़ चाहिए। इसलिए कहते हैं कि, 'भगवान के सिर पर फूल चढ़ाना।' तो अपने तीर्थंकर भगवान की मूर्ति पर फूल रखते हैं या नहीं रखते? आपने नहीं देखा अभी तक? मूर्तिपूजा करने नहीं गए हैं न?! वहाँ मूर्ति पर फूल रखते हैं।

भगवान ने साधुओं से कहा था कि आप भावपूजा करना। और जैन द्रव्यपूजा साथ में करें। द्रव्यपूजा करने से उनकी अड़चनें सभी

खतम हो जाती है। इसलिए हम क्या कहते हैं कि जिसे अड़चन हो, वे ज्ञानी पुरुष को फूल चढ़ाएँ और अड़चन न हो उसे कोई ज़रूरत नहीं। सभी को क्या एक जैसा होता है? कुछ लोगों को कैसी-कैसी अड़चनें होती है! वे सभी चली जाती हैं। और 'ज्ञानी पुरुष' को तो इसमें कुछ छूता नहीं है और बाधक भी नहीं होता।

फिर भी कुछ लोग मुझे कहते हैं कि 'पुष्प पांखडी ज्यां दुभाय जिनवरनी नहीं आज्ञा। भगवान की आज्ञा नहीं है न?' मैंने कहा, 'यह तो कॉलेज के तीसरे वर्ष की बात अभी सेकन्ड स्टेन्डर्ड में किसलिए ले आते हो? कॉलेज के तीसरे वर्ष में उस पर अटेन्शन देना है। आप अभी सेकन्ड में किसलिए लाते हो यह सब?' तब वे कहते हैं, 'वह तो विचार करने जैसी बात है।' मैंने कहा, 'तब विचार करो। यह सेकन्ड, थर्ड स्टेन्डर्ड में लाने की ज़रूरत नहीं है। आप अंतिम वर्ष में आओ तब करना न!' तब कहते हैं कि, 'उसकी लिमिट कितनी होती है?' मैंने कहा कि, 'अंतिम जन्म में भगवान महावीर विवाहित थे, ऐसा आप नहीं जानते?' तब कहते हैं कि, 'हाँ, विवाहित थे।' मैंने कहा कि, 'कितने वर्ष तक संसार में रहे थे?' तब कहे, 'तीस वर्षों तक।' मैंने कहा कि, 'संसार में रहे थे उसका कोई प्रमाण है आपके पास?' तब कहते हैं कि, 'उनके बेटी थी न!' मैंने कहा कि, 'संसार में रहते हैं इसलिए वे तो स्त्री के अपरिग्रही तो नहीं ही थे न? परिग्रही थे। परिग्रही हों तो बेटी होगी न? नहीं तो प्रमाण क्या होगा? इसलिए तीस वर्ष तक वे अपरिग्रही थे। तो भगवान ने ऐसा क्या देखा कि स्त्री का परिग्रह उस जन्म में हो और उस जन्म में मोक्ष में भी जा सकें? तो उन्होंने ऐसी क्या खोज की?! इसलिए यह फाइनल बात है सारी।

इसलिए मूर्ति को भी फूल चढ़ाए जा सकते हैं और अपने तीर्थंकरों की मूर्ति पर भी फूल चढ़ाए जा सकते हैं। ये तो ऐसे फूल की पंखुड़ी को नहीं दुख देते और ऐसे साथवालों के साथ कषाय कर-करके दम निकाल डालते हैं। पुष्प की पंखुड़ी दुख नहीं पाए,

ऐसे मनुष्य से तो, एक कुत्ता सो रहा हो और वह उधर से गुज़रे तो कुत्ता जगे नहीं, ऐसा होता है।

यह पुष्प पंखुड़ी तब भी न दुख पाए ऐसा अंतिम जन्म में अंतिम पंद्रह वर्ष मोक्ष जाने में बाकी रहे हों, तब ही बंद करना होता है। इसलिए अंतिम पंद्रह वर्ष के लिए सँभाल लेना है। और जब से स्त्री का योग छोड़ते हैं, उसके बाद अपने आप ये पुष्प और ये सभी रख देना होता है। और वह तो अपने आप ही बंद हो जाता है। इसलिए तब तक व्यवहार में कोई दख़ल करनी नहीं।

एकेन्द्रिय जीवों की सृष्टि

प्रश्नकर्ता : ये अपकाय, तेउकाय, पृथ्वीकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, वे क्या है?

दादाश्री : वे सब एकेन्द्रिय जीव हैं।

प्रश्नकर्ता : पानी में जीव है वह हमें श्रद्धा बैठ गई है इसलिए हम उबालकर पानी पीते हैं।

दादाश्री : मेरा कहना है कि पानी में जीवों की बात आप जो समझे हो और कहते हो, वह तो इन लोगों का कहा हुआ आपने मान लिया है। बाकी, बात इसमें समझ आए ऐसी नहीं है। आज के बड़े-बड़े साइन्टिस्टों को समझ में आए ऐसी नहीं है न! और बात बहुत सूक्ष्म है। वह ज्ञानी खुद समझ सकते हैं। परन्तु इसे विस्तारपूर्वक समझाने जाएँ, तब भी आपको समझ में नहीं आए ऐसी बात है। ये पाँच जो हैं न, उनमें वनस्पतिकाय अकेला ही समझ में आए ऐसा है। बाकी वायुकाय, तेउकाय, जलकाय और पृथ्वीकाय, इन चार जीवों को समझने के लिए बहुत ऊँचा लेवल चाहिए।

प्रश्नकर्ता : साइन्टिस्ट वही खोज कर रहे हैं न!

दादाश्री : पर साइन्टिस्ट नहीं समझ सकेंगे। सिर्फ इस पेड़ में ही समझ सकते हैं। वह भी बहुत प्रकार से नहीं, कुछ ही प्रकार से समझ सकते हैं।

ऐसा है, यह आपको भगवान की भाषा की बात कह दूँ। ये पेड़-पौधे जो सब खुली आँखों से दिखते हैं, वे वनस्पतिकाय हैं। इस पेड़ में भी जीव है। यह वायुकाय यानी वायु में भी जीव हैं, उन्हें वायुकाय जीव कहा है। फिर यह मिट्टी है न, उसके अंदर भी जीव हैं और मिट्टी भी हैं। यह हिमालय में मिट्टी है, पत्थर हैं, उन सभी में जीव हैं। पत्थर भी जीवित होते हैं, उन्हें पृथ्वीकाय जीव कहा है। ये अग्नि में लपटें उठती हैं न, उस घड़ी उस कोयले में अग्नि नहीं होती। वे तो तेउकाय जीव वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं। वे तेउकाय जीव। यह पानी पीते हैं, वे केवल जीवों का ही बना हुआ है। हाँ, जीव और उनकी देह- दोनों मिलकर यह पानी है। उन्हें भगवान ने अपकाय नाम के जीव कहा है। जिन का पानीरूपी शरीर है। ऐसे कितने सारे जीवों के इकट्ठे होने से एक प्याला पानी बनता है। अब यह पानी-वह जीव, यह खुराक-वह जीव, यह हवा-वह भी केवल जीव, सब जीव ही हैं।

सिद्धि, अहिंसा की

प्रश्नकर्ता : तो अब अहिंसा किस प्रकार सिद्ध हो?

दादाश्री : अहिंसा? ओहोहो, अहिंसा सिद्ध हो जाए तो मनुष्य भगवान हो जाए! अभी थोड़ी-बहुत अहिंसा पालते हो?

प्रश्नकर्ता : साधारण। बहुत नहीं।

दादाश्री : तो फिर थोड़ी-बहुत पालन करने का निश्चिच करो न! अरे फिर सिद्ध होने की बातें कहाँ करते हो? अहिंसा सिद्ध हो जाए तो भगवान हो गया!

प्रश्नकर्ता : अहिंसा पालने का उपाय बताइए।

दादाश्री : एक तो, जो जीव अपने से त्रास पाए उसे दुख नहीं देना चाहिए, उसे त्रास नहीं देना चाहिए। और गेहूँ है, बाजरा है, चावल है, उन्हें खाओ। उसका हर्ज नहीं है। वे अपने से त्रास

नहीं पाते, वे अभान अवस्था में हैं और ये कीड़े-मकोड़े वे तो दौड़ जाते हैं, उन्हें नहीं मारना चाहिए। ये सीप-शंख के जो जीव होते हैं, जो हिलते-डुलते हैं ऐसे दो इन्द्रिय से लेकर और पाँच इन्द्रिय तक के जीवों को कुछ नहीं करना चाहिए। खटमल को भी आप पकड़ो तो त्रस्त हो जाता है। इसलिए आप उसे मारो नहीं। समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, समझ में आया।

दादाश्री : हाँ, दूसरा, सूर्यनारायण के अस्त हो जाने के बाद भोजन मत करो।

अब तीसरा, अहिंसा में जीभ का बहुत कंट्रोल रखना पड़ता है। आपको कोई कहे कि आप नालायक हो, तो आपको सुख होता है या दुख होता है?

प्रश्नकर्ता : दुख होता है।

दादाश्री : तो आपको इतना समझ जाना है कि हम उसे 'नालायक' कहें तो उसे दुख होगा। वह हिंसा है, इसलिए हमें नहीं कहना चाहिए। यदि अहिंसा पालनी हो तो हिंसा के लिए बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। हमें जिससे दुख होता है, वैसा दूसरों को नहीं कह सकते।

फिर मन में खराब विचार भी नहीं आना चाहिए। किसी का मुफ्त में ले लेना है, हड़प लेना है ऐसे विचार कोई आने ही नहीं चाहिए। बहुत पैसे इकट्ठे करने के विचार नहीं आने चाहिए। क्योंकि शास्त्रकारों ने क्या कहा है कि पैसे तेरे हिसाब के जो हैं, वे तो तेरे लिए आया ही करते हैं। तो बहुत पैसे इकट्ठे करने के विचार करने की तुझे ज़रूरत ही नहीं। तू ऐसा विचार करे तो उसका अर्थ हिंसा होता है। क्योंकि दूसरे के पास से हड़प लेना, दूसरों का क्वोटा हमें ले लेने की इच्छा होती है, इसलिए वहाँ भी वह हिंसा समाई हुई है। इसलिए ऐसे कोई भाव नहीं करना।

प्रश्नकर्ता : बस, ये तीन ही उपाय हैं अहिंसा के?

दादाश्री : और भी हैं दूसरे। फिर माँसाहार, अंडे, कभी भी नहीं खाने चाहिए। फिर आलू है, प्याज़ है, लहसुन है, ये चीज़ मत लेना। कोई रास्ता न हो तब भी मत लेना। क्योंकि ये प्याज़-लहसुन हिंसक है, मनुष्य को क्रोधी बनाते हैं और क्रोध हो, तब सामनेवाले को दुख होता है। दूसरी आपको जो सब्ज़ी खानी हो वह खाना।

पहले बड़े जीव बचाओ

अब भगवान क्या कहना चाहते हैं कि पहले मनुष्यों को सँभालो। हाँ, वह बाउन्ड्री सीखो कि मनुष्यों को तो मन-वचन-काया से किंचित् मात्र दुख नहीं देना है। फिर पंचेन्द्रिय जीव- गाय, भेंस, मुर्गी, बकरे, ये सब जो हैं, उनकी मनुष्यों से थोड़ी-बहुत कम, परन्तु उनकी सँभाल रखनी चाहिए। उन्हें दुख नहीं हो ऐसा ध्यान रखना चाहिए। मतलब यहाँ तक ध्यान रखना है। मनुष्य के अलावा के पंचेन्द्रिय जीवों को, लेकिन वह सेकन्डरी स्टेज में। फिर तीसरी स्टेज कौन-सी आती है? दो इन्द्रिय से ऊपर के जीवों का ध्यान रखना।

आहार में सबसे ऊँचा आहार कौन-सा? एकेन्द्रिय जीवों का! दो इन्द्रिय के ऊपर के जीवों के आहार का, जिसे मोक्ष में जाना हो उसे अधिकार नहीं है। इसलिए दो इन्द्रिय से अधिक इन्द्रियवाले जीवों की जोखिम हमें नहीं उठानी चाहिए। क्योंकि जितनी उनकी इन्द्रियाँ उतने प्रमाण में पुण्य की ज़रूरत है, उतना मनुष्य का पुण्य खर्च हो जाता है!

मनुष्य को खुराक खाए बिना छुटकारा ही नहीं और उस जीव का नुकसान तो मनुष्य को अवश्य जाता है। अपना जो भोजन है वह एकेन्द्रिय जीव ही है। उनका भोजन हम करें तो वे भोज्य और हम भोक्ता हैं और तब तक जिम्मेदारी आती है। पर भगवान ने यह छूट दी है। क्योंकि आप महान *सिलक* (पूंजी, राहखर्च) वाले हो और आप उन जीवों का नाश करते हो। पर उन जीवों को खाते हैं, उसमें

उन जीवों को क्या फायदा? और उन जीवों को खाने से नाश तो होता ही है। परन्तु ऐसा है, यह भोजन खाया इसलिए आपको दंड लागू होता है। पर वह खाकर भी आप नफा अधिक कमाते हो। सारे दिन जीए और धर्म किया तो आप सौ कमाते हो। उसमें से दस का जुर्माना आपको उन्हें चुकाना पड़ता है। इसलिए नब्बे आपके पास रहे हैं और आपकी कमाई में से दस उन्हें मिलने से उनकी ऊर्ध्वगति होती है। यानी यह तो कुदरत के नियम के आधार पर ही ऊर्ध्वगति हो रही है। वे एकेन्द्रिय में से दो इन्द्रिय में आ रहे हैं। यानी इस प्रकार यह क्रमपूर्वक बढ़ता ही जा रहा है। इन मनुष्यों के लाभ में से वे जीव लाभ उठाते हैं। इस तरह हिसाब सारा चुकता होता रहता है। यह सब साइन्स लोगों को समझ में नहीं आता न!

इसलिए एकेन्द्रिय में हाथ मत डालना। एकेन्द्रिय जीवों में आप हाथ डालोगे तो आप इगोइज़मवाले हो, अहंकारी हो। एकेन्द्रिय त्रस जीव नहीं है। इसलिए एकेन्द्रिय के लिए आप कोई विकल्प करना नहीं। क्योंकि यह तो व्यवहार ही है। खाना-पीना पड़ेगा, सब करना पड़ेगा।

बाकी, जगत् सारा जीवजंतु ही है। एकेन्द्रिय जीव का तो सभी यह जीवन ही है। जीव बिना तो इस दुनिया में कोई वस्तु ही नहीं। और निर्जीव वस्तु खाई जा सके ऐसी नहीं है। इसलिए जीववाली वस्तु ही खानी पड़ती है। उससे ही शरीर को पोषण मिलता है। और एकेन्द्रिय जीव हैं इसलिए खून, पीब, माँस नहीं है इसलिए एकेन्द्रिय जीव आपको खाने की छूट दी है। इसमें तो इतनी सारी चिंताएँ करने जाओ, तो कब पार आए? उस जीव की चिंता करनी ही नहीं है। चिंता करनी थी वह रह गए और नहीं करने की चिंता पकड़ रखी है। ऐसी झीनी हिंसा की तो चिंता करने की ज़रूरत ही नहीं।

कौन-सा आहार उत्तम?

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग में कुछ खास खुराक खाना क्यों निषेद्य हैं?

दादाश्री : ऐसा है, खुराक के प्रकार हैं। उसमें मनुष्य को अत्यंत अहितकारी खुराक, कि जिससे अधिक दूसरा कुछ अहितकारी नहीं होता ऐसा अंतिम प्रकार का अहितकारी, वह मनुष्य का माँस खाना, वह है। अब उससे अच्छा क्या? जिस जानवर की औलाद बढ़ती हो, उस जानवर का माँस खाना वह अच्छा। इसलिए इन मुर्गी-बतक, उनकी औलाद बहुत बढ़ती हैं। इन गायों-भैंसों की औलाद कम बढ़ती हैं। इन मछलियों की औलाद बहुत बढ़ती हैं। तो वह माँस खाना अच्छा। उससे भी आगे कोई कहे, 'हमें प्रगति करनी है।' तो यह माँस खाना भी नुकसानदायक है। उसके बदले तू अंडे खा। माँस मत खाना तू। अब उससे भी आगे बढ़ना है, तो उसे कहूँ कि, 'तू कंदमूल खाना।' उससे भी आगे बढ़ना हो तो उसे हम कहें, 'इन कंदमूल के सिवाय दाल, चावल, रोटी, लड्डू, घी, गोल सब खाना।' और उससे आगे बढ़ना हो तो हम कहें कि, 'ये छः *वीगई* हैं - गोल, घी, शहद, दही, मक्खन और वह सब बंद कर और ये दाल-चावल-रोटी-सब्ज़ी खा।' फिर आगे यह कुछ भी रहता नहीं।

इस प्रकार भोजन के भाग हैं। उसमें जिसे जो भाग पसंद आए वह ले। ये सब रास्ते बताए हुए हैं। इस प्रकार आहार का वर्णन है। और यह वर्णन समझने के लिए है, करने के लिए नहीं है। ये भाग किसलिए भगवान ने किए हैं? कि आवरण टूटें इसके लिए। इस रस्ते चलें, तो अंदर आवरण टूटते जाते हैं।

विज्ञान, रात्रिभोजन का

प्रश्नकर्ता : रात्रिभोजन के बारे में कुछ मार्गदर्शन दीजिए। जैनो में वह निषेध है।

दादाश्री : रात्रिभोजन यदि न किया जाए तो वह सबसे उत्तम वस्तु है। वह अच्छी दृष्टि है। धर्म का और उसका लेना-देना नहीं है। फिर भी यह तो धर्म में डाल दिया है, उसका कारण क्या है? कि जितनी शरीर की शुद्धि होती है, उतना धर्म में आगे बढ़ते हैं।

उस हिसाब से धर्म में डाल दिया है। बाकी धर्म में कोई उसकी ज़रूरत नहीं है। पर शरीर की शुद्धि के लिए सबसे अच्छी वस्तु यह है।

प्रश्नकर्ता : तो इन वीतरागों ने लोगों से जो कहा है कि रात्रिभोजन नहीं लेना चाहिए। वह पाप-पुण्य के लिए था या शारीरिक तंदुरुस्ती के लिए था?

दादाश्री : शारीरिक तंदुरुस्ती और हिंसा के कारण भी कहा था।

प्रश्नकर्ता : परन्तु रात्रिभोजन किसलिए नहीं लेना चाहिए?

दादाश्री : सूर्य की उपस्थिति में शाम का भोजन लेना चाहिए। ऐसा जैनमत ने कहा है और वेदांत ने भी ऐसा कहा है। सूर्य जब तक हो तब तक अंदर पंखुड़ी खुली रहती है, इसलिए उस समय खा लेना चाहिए, ऐसा वेदांत ने कहा है। इसलिए रात को तू भोजन लेगा तो क्या नुकसान होगा? कि वह कमल तो बंद हो गया, इसलिए पाचन तो जल्दी नहीं ही होगा। पर दूसरा क्या नुकसान होगा? वह इन्होंने, तीर्थंकरों ने कहा है कि रात को सूर्यनारायण अस्त हो जाते हैं, तब जीवजंतु जो घूमते हैं, वे सब जीव खुद के घर की तरफ वापिस लौटते हैं। कौए, कुत्ते, कबूतर, फिर आकाश के जीव, सभी घर की तरफ लौटते हैं, खुद के घौंसलों की तरफ जाते हैं। अंधेरा होने से पहले घर में घुस जाते हैं। कईबार आकाश में बादल जबरदस्त आए हों और सूर्यनारायण अस्त हुआ या नहीं अस्त हुआ वह पता नहीं चलता, परन्तु जीव वापिस लौटते हैं उस समय समझ लेना कि ये सूर्यनारायण अस्त हो गए। वे जीव अपनी आंतरिक शक्ति से देख सकते हैं। अब उस समय छोटे से छोटे जीव भी घर में घुसते हैं और बहुत सूक्ष्म जीव, जो आँखों से नहीं दिखते, दूरबीन से नहीं दिखते, ऐसे जीव भी घर में अंदर घुस जाते हैं। और अंदर जाकर जहाँ पर भोजन होता है, उस पर बैठ जाते हैं। हमें पता भी नहीं चले कि अंदर बैठे हैं। क्योंकि उनका रंग ऐसा होता है कि चावल पर बैठें तो चावल जैसा ही रंग होता है और रोटी पर बैठें तो वे रोटी के रंग के

दिखते हैं, बाजरे की रोटी पर बैठें तो उसके रंग के दिखते हैं। इसलिए रात को यह भोजन नहीं खाना चाहिए।

रात्रिभोजन नहीं करना चाहिए, फिर भी लोग करते हैं। यह कुछ लोगों को पता नहीं है कि रात्रिभोजन से क्या नुकसान है और जिन्हें पता है वे दूसरे संयोगों में फँसे हुए होते हैं। बाकी रात्रिभोजन न करें तो बहुत उत्तम है। क्योंकि वह महाव्रत है। वह पाँच के साथ छठा महाव्रत जैसा है।

प्रश्नकर्ता : संयोगवश रात्रिभोजन करना पड़े तो उसमें कर्म का बंधन है?

दादाश्री : नहीं। कर्म का बंधन कुछ भी नहीं है। वह किस आधार पर तोड़ना पड़ता है? और जो रात्रिभोजन का त्याग किया, वह किसी ने सिखलाया होगा न?

प्रश्नकर्ता : जैनों के संस्कार होते हैं न!

दादाश्री : हाँ। तो भगवान महावीर का नाम लेकर प्रतिक्रमण करना चाहिए। वह भगवान की आज्ञा है इसलिए आज्ञा पालनी चाहिए। और जिस दिन नहीं पाली जा सके तो उनसे माफ़ी माँग लेना। इसलिए यदि अहिंसा पालनी हो, तो हो सके तब तक दिन में भोजन करो तो उत्तम। आपका शरीर भी बहुत सुंदर रहेगा। वैसा जल्दी हमेशा के लिए खाते हो?

प्रश्नकर्ता : अभी-अभी शुरू किया है।

दादाश्री : किसने करवाया?

प्रश्नकर्ता : खुद की इच्छा से।

दादाश्री : पर अब ऐसा अहिंसा के हेतुपूर्वक करता हूँ ऐसा मानना। 'दादा' ने मुझे समझाया है और मुझे वह पसंद आया इसलिए अहिंसा के लिए ही मैं यह करता हूँ, ऐसा करना। क्योंकि यों ही, हेतु न हो तो तब तक सब बेकार जाता है। आप कहो कि मैं फ़ॉरेन

जाने के लिए ही ये पैसे भरता हूँ। तो फ़ॉरेन जाने की टिकट आपको मिलेगी। पर आपने कुछ भी नहीं कहा हो तो किसकी टिकट दें?

कंदमूल, सूक्ष्म जीवों का भंडार

प्रश्नकर्ता : कंदमूल खाएँ उसमें कोई निषेध है?

दादाश्री : बहुत बड़ा निषेध है।

प्रश्नकर्ता : प्याज़-आलू में अनंत जीव हैं।

दादाश्री : हाँ, अनंतकाय जीव हैं, तो?

प्रश्नकर्ता : तो वह खाने का आप बोध देते हैं?

दादाश्री : भगवान ने मना किया है। भगवान ने मना किया है वह आपकी बिलीफ़ में रहना ही चाहिए। और उसके बावजूद भी खा लिए जाएँ, वह आपके कर्म का उदय है। फिर भी आपकी श्रद्धा बिगड़नी नहीं चाहिए। भगवान ने जो कहा है, वह सारी श्रद्धा नहीं बिगड़नी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कंदमूल नहीं खाने का क्यों कहा है?

दादाश्री : कंदमूल तो दिमाग़ को जागृत नहीं होने देते, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : एकेन्द्रिय जीव की हानि हो इसके लिए नहीं?

दादाश्री : यह तो लोग ऐसा समझते हैं कि आलू के जीवों का रक्षण करने के लिए नहीं खाने हैं। अब आलू भाते हो तब बहुत इधर-उधर मत करना। क्योंकि दूसरा कुछ इस काल में खाने का लोगों को भाता नहीं है। और वह छोड़ दिया तो क्या करोगे?

प्रश्नकर्ता : पर ऐसा कहते हैं कि आलू खाएँ तो पाप लगता है।

दादाश्री : ऐसा है, किसी जीव को दुख दोगे तो पाप लगेगा। पति को, पत्नी को, बच्चों को, पड़ोसी को दुख दोगे तो पाप लगेगा। बाकी, आलू खाने से आपको नुकसान क्या होगा? कि दिमाग़ की

स्थूलता आएगी, मोटी बुद्धि हो जाएगी। कंदमूल में सूक्ष्मजीव बहुत हैं, केवल जीवों का ही भंडार है। इसलिए कंदमूल से जड़ता आती है और कषाय उत्पन्न होते हैं। हमें जागृति की ज़रूरत है। इसलिए यदि कंदमूल कम खाए जाएँ तो अच्छा है, परन्तु वह भी भगवान की आज्ञा में आ जाएँ, उसके बाद फिर जागृति की ज़रूरत है। और कंदमूल खाओगे तो यह जागृति मंद हो जाएगी और जागृति मंद हुई तो मोक्ष में किस तरह जाएगा?

इसलिए भगवान ने यह सब सच्ची बात कही है। यह सब आपसे पाली जा सकें तो पालो और न पाली जा सकें तो कोई हर्ज नहीं। जितनी पाली जा सकें उतनी पालो। यदि पाली जा सकें तो अच्छी बात है।

बड़े से बड़ी हिंसा, कषाय में

यह तो सब उल्टा ही कर दिया है। एक तरफ ऐसा करते हैं और एक तरफ देखो कषाय करते हैं! इसलिए तीन रुपये का फायदा करता है और करोड़ रुपये का नुकसान उठाता है! अब इसे व्यापारी कैसे कहा जाए? और यह तो देखो, ऐसे ठेठ तक पकड़कर बैठे हैं और वैसे अपार हिंसा करते हैं। बड़े से बड़ी हिंसा हो इस जगत् में तो कषाय की (यानी क्रोध-मान-माया-लोभ की) है! कोई कहेगा कि भाई, यह जीव मार रहा है और यह कषाय कर रहा है तो किसे अधिक पाप लगेगा? तो कषाय इतने अधिक क़ीमती हैं कि जीव मारे उसकी तुलना में कषाय में अधिक पाप है।

बात को समझो

वे सभी बातें भगवान ने कही है न, वे आपको समझाने के लिए कहा है। आग्रह पकड़ने नहीं हैं। आप जितना हो सके उतना करना। भगवान ने ऐसा नहीं कहा है कि शक्ति से बाहर करना।

ज्ञानी आग्रह करवाएँ ऐसे नहीं होते। ये दूसरे तो आग्रह पकड़वाते हैं। ज्ञानी तो क्या कहते थे कि लाभालाभ का व्यापार देखो! शरीर को

प्याज़ से पच्चीस प्रतिशत फायदा हुआ और पाँच प्रतिशत प्याज़ के कारण नुकसान हुआ, यानी मेरे घर में बीस रहे हैं। इस प्रकार करते थे। जब कि इन लोगों ने लाभालाभ का व्यापार उड़ा दिया है और मार-पीटकर 'प्याज़ बंद कर, और आलू बंद कर' कहेंगे। अरे, किसलिए? आलू के साथ आपको बैर है? या आपको प्याज़ के साथ बैर है? और उसे तो जो छोड़ा हो न, वही याद आया करता है। भगवान के जैसा, वही याद आया करता है!

'हमने' भी नियम पाले थे

जब कि मैं तो जैन नहीं था। मैं जैनेतर था। फिर भी मुझे यह ज्ञान होने से पहले निरंतर कंदमूल का त्याग था, हमेशा चोवियार था, हमेशा गरम पानी (उबालकर) पीता था। दूसरे शहर जाऊँ या चाहे जहाँ जाऊँ फिर भी उबला हुआ पानी। हम और हमारे हिस्सेदार दोनों उबले हुए पानी की शीशियाँ साथ में रखते थे। यानी हम तो भगवान के नियम में रहते थे।

अब किसी को यह नियम सब मुश्किल लगते हों, तो ऐसा नहीं है कि आपको सब पालने ही चाहिए। मैं आपको ऐसा नहीं कहता कि आप ऐसा ही करो। आपसे हो, तो करना। यह अच्छी चीज़ है, हितकारी है। भगवान ने तो हितकारी समझकर कहा है, उसे पकड़कर रखने के लिए नहीं कहा है। उसके आग्रही हो जाने के लिए नहीं कहा है।

हमें, ज्ञानी पुरुष को तो त्यागात्याग नहीं होता है। पर ये कितने ही लोग इतने ज्यादा दुखी होते हैं कि 'आप चोवियार नहीं करते? हमें बहुत दुख होता है।' मैंने कहा, 'चोवियार करूँगा।' क्या करूँ तब? वह तो ज्ञानी होने के बाद तो त्यागात्याग संभवे नहीं। फिर लोगों को समझ में आए वैसा समझें। बाकी, हमें किसी चीज़ की इच्छा ही नहीं न! हम तो, हिंसा के सागर में भगवान ने हमें अहिंसक कहा है बाकी, हम तो पहले से ही हमेशा चोवियार करते थे। अब तो हमें,

यह सत्संग रखा हो न, इसलिए किसी दिन चोवियार होता है और दो-चार दिन हमसे चोवियार नहीं भी होता है। परन्तु हमारा हेतु चोवियार का है। वह मुख्य वस्तु है।

उबला हुआ पानी, पीने में

प्रश्नकर्ता : यह पानी को उबालकर पीने का कहते हैं, वह किसलिए?

दादाश्री : वे क्या कहना चाहते हैं? पानी की एक बूँद में अनंत जीव हैं। इसलिए पानी को खूब उबालो ताकि वे जीव मर जाएँ और फिर वह पानी पीओ तो आपका शरीर अच्छा रहेगा और तब आत्मध्यान रहेगा। तब उसका ये लोग उल्टा समझ बैठे हैं।

भगवान ने तो शरीर अच्छा रखने के लिए सब प्रयोग बताए थे। इसलिए उल्टे पानी उबालकर पीने का कहते हैं। पानी नहीं उबालें, उसे जीवहिंसा पाली कहलाएगा। खुद का शरीर भले बिगड़े पर हमें पानी उबालना नहीं है। उसके बदले यह तो भगवान पानी उबालकर पीने का कहते हैं, तो आपका शरीर अच्छा रहे। और आठ घंटों बाद वापिस अंदर जीव पड़ जाएँगे, इसलिए फिर वह मत पीना। वापिस दूसरा उबालकर पीना, ऐसा कहते हैं।

इसलिए यह पानी गरम करना वह हिंसा के कारण नहीं कहा है, वह शारीरिक तंदुरुस्ती के लिए कहा है। पानी गरम करने से जलकाय जीव खत्म हो जाते हैं। पर इसके पाप के लिए नहीं कहा है। आपके शरीर को बहुत अच्छा रहे, पेट में जीवाणु न उत्पन्न हों और ज्ञान को आवरण न करें, इसलिए कहा है। पानी गरम करें, तब बड़े जंतु होते हैं, वे सभी मर जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो वह हिंसा हुई न?

दादाश्री : उस हिंसा का हर्ज नहीं है। क्योंकि शरीर तंदुरुस्त हो तो आप धर्म कर सकते हैं। और वैसे तो सारी हिंसा ही है, इस

जगत् के अंदर केवल हिंसा ही है। हिंसा के बाहर एक अक्षर भी नहीं है। खाते हो, पीते हो, वे सब जीव ही हैं।

अब भगवान ने तो एकेन्द्रिय जीव के लिए ऐसा झँझट करने का कहा ही नहीं। यह तो सब उल्टा समझ लिया है। एकेन्द्रिय जीव के लिए ऐसा कहा होता न, तो 'ठंडा पानी ही पीना, नहीं तो पानी उबालने से सब जीव मर जाएँगे' ऐसा कहते। पानी गरम करने में कितने जीव मारे?

प्रश्नकर्ता : अनेक।

दादाश्री : उसमें जीव दिखते नहीं है। पर वह पानी है न वे अपकाय जीव हैं। उनकी काया ही पानी है। उनका शरीर ही पानी है। बोलो अब, तब अंदर जीव कहाँ बैठे होंगे? लोगों को वे किस तरह मिलें? यह तो शरीर दिखता है उन सब जीवों के शरीर इकट्ठे करें, वही पानी है, पानीरूपी जिनका शरीर हैं, वैसे जीव हैं। अब इसका पार कहाँ आए?

हरी सब्ज़ी में समझा उल्टा

प्रश्नकर्ता : बरसात में हरी सब्ज़ी नहीं खानी चाहिए ऐसा कहते हैं, वह किसलिए?

दादाश्री : हरी सब्ज़ी में लोग उल्टा समझे हैं। हरी सब्ज़ी यानी वह जीव की हिंसा नहीं है। हरी सब्ज़ी पर सूक्ष्म जीव बैठते हैं और वे जीव पेट में जाएँ तो रोग होता है। शरीर को नुकसान करते हैं, इसलिए फिर धर्म नहीं हो पाता। इसके लिए भगवान ने मना किया है। हम क्या कहना चाहते हैं कि ऐसा उल्टा क्या समझे? जो (दवाई) चुपड़ने की थी वह सारी पी गए और पीने को कहा था वह चुपड़ते रहते हैं, इसलिए रोग कम होता दिखता नहीं है।

एन्टीबायोटिक्स से होनेवाली हिंसा

प्रश्नकर्ता : बुख़ार आया, फुंसी हुई-पक गया, फिर ये भीतर जीवाणुओं को मार डालने की दवाई देते हैं....

दादाश्री : इतनी जीवाणु की चिंता करनी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पेट में कृमि हुए हों और उसे दवाई नहीं दें, तो वह बच्चा मर जाएगा।

दादाश्री : उसे दवाई ऐसी पिला कि अंदर कृमि कोई रहे ही नहीं, वह करना ही है।

प्रश्नकर्ता : अब आत्मसाधना के लिए शरीर को अच्छा रखना है। अब उसे अच्छा रखने में यदि जीवों की हानि हो, तो वह करना चाहिए या नहीं करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा है न, आत्मसाधना किसका नाम कहलाता है? कि आपको शरीर का ध्यान रखना है, ऐसा यदि आप भाव करने जाओगे तो साधना कम हो जाएगी। यदि पूरी साधना करनी हो तो शरीर का आपको ध्यान नहीं रखना है। शरीर तो उसका सब लेकर ही आया है। सब ही प्रकार की सँभाल लेकर आया हुआ है। और आपको उसमें कोई गड़बड़ करने की ज़रूरत नहीं है। आप आत्मसाधना में पूरी तरह लग जाओ, हंड्रेड परसेन्ट। और यह दूसरा सब कम्पलीट है। इसलिए मैं कहता हूँ न, कि भूतकाल बीत गया, भविष्यकाल 'व्यवस्थित' के ताबे में है, इसलिए वर्तमान में बरतो।

फिर भी हम क्या कहते हैं कि जिस देह से ज्ञानी पुरुष को पहचाने उसे मित्र समान मानना। ये दवाईयाँ हिंसक हों तो वे भी लेना, पर शरीर को सँभालना। क्योंकि लाभालाभ का व्यापार है यह। यह शरीर यदि दो वर्ष अधिक टिका, तो इस देह से ज्ञानी पुरुष को पहचाना है, तो दो वर्ष में कुछ का कुछ काम निकाल डालोगे। और एक तरफ हिंसा के बारे में नुकसान जाएगा, तो इसके बदले तो बीस गुना कमाई है। तो बीस में से उन्नीस तो अपने घर रहा। यानी लाभालाभ का व्यापार है।

बाकी केवल जीवजंतु ही है। यह जगत् केवल जीव ही है। ये

श्वास में कितने जीव मर जाते हैं, तो हमें क्या करना चाहिए? श्वास लिए बिना बैठे रहना चाहिए? बैठे रहते तो अच्छा था। उनका निबेड़ा(!) आ जाता। बगैर काम के पागलपन किया है यह तो।

अब इन सबका कोई अंत ही नहीं आए ऐसा है। इसलिए जो कुछ करते हो न, वह करते रहना। इसमें कोई बाल की खाल निकालने जैसा है नहीं। मात्र जो जीव हमसे त्रस्त होते हैं उन जीवों को हो सके वहाँ तक परेशान मत करना।

आहार, डेवलपमेन्ट के आधार पर

फ़ॉरेनवाले क्या कहते हैं? 'भगवान ने यह दुनिया बनाई इसलिए इन मनुष्यों को बनाया। और दूसरा सब ये बकरे-मछलियाँ हमारे खाने के लिए भगवान ने बनाए।' अरे, तुम्हारे खाने के लिए बनाए, तो ये बिल्ली-कुत्ते-बाघ को क्यों नहीं खाते! खाने के लिए बनाया होता तो सब एक जैसा ही बनाया होता न? भगवान ऐसा करते नहीं हैं। भगवान ने बनाया होता तो सभी आपके लिए खाने लायक चीज़ें ही बनाते। पर यह तो साथ-साथ अफीम बनाते हैं या नहीं बनाते? और कूच (एक प्रकार का जंगली पौधा) भी होते हैं न? उसे भी बनाते हैं न? यदि भगवान बना रहे होते तो सब किसलिए बनाएँ? कूच और उन सबकी क्या ज़रूरत? मनुष्य के सुख के लिए ही सभी चीज़ें बनाते चैन से! इसलिए उल्टा ज्ञान जान बैठे हैं कि भगवान ने बनाया। अरे वे फ़ॉरेनवाले तो अभी पुनर्जन्म को समझते नहीं है। इसलिए मन में ऐसा होता है कि यह सब अपने खाने के लिए ही है। अब पुनर्जन्म को समझें तब तो मन में विचार आए कि अपना ऐसा जन्म हो जाए तब क्या हो? पर उन्हें वैसा विचार आता नहीं।

अपने हिन्दुस्तान के लोगों को विचार आया, तभी ये ब्राह्मण कहते हैं कि हमसे माँसाहार नहीं छुआ जा सकता। वैश्य कहते हैं कि, हमसे माँसाहार नहीं छुआ जा सकता। शूद्र कहते हैं, छू सकते

हैं। पर वे लोग तो मरा हुआ जानवर होता है न उसे भी खाते हैं। और ये क्षत्रिय हैं, वे भी माँसाहार करते हैं।

चिढ़, माँसाहारी पर

दादाश्री : आप वेजिटेरियन पसंद करते हो या नोनवेजिटेरियन?

प्रश्नकर्ता : मैंने अभी तक नोनवेजिटेरिन टेस्ट किया नहीं है।

दादाश्री : पर वह अच्छी वस्तु है, ऐसा बोला नहीं है?

प्रश्नकर्ता : ना। मैं वेजिटेरियन खाता हूँ। पर उसका अर्थ ऐसा नहीं कि नोनवेजिटेरियन खराब है।

दादाश्री : ठीक है। खराब मैं उसे कहता नहीं हूँ।

मैं प्लेन में आ रहा था। मेरी सीट पर मैं अकेला ही था, मेरे साथ दूसरा कोई था ही नहीं। एक बड़ा मुसलमान सेठ होगा, वह अपनी सीट पर से उठकर मेरे बगल में आ बैठा, मैं कुछ बोला नहीं। फिर मुझे धीरे से कहता है, 'मैं मुसलमान हूँ और हम नोनवेजिटेरिन फूड खाते हैं। तो आपको उस पर कोई दुख नहीं होता?' मैंने कहा, 'ना, ना। मैं आपके साथ भोजन करने बैठ सकता हूँ। सिर्फ इतना ही कि मैं लेता नहीं। आप जो कर रहे हो वह व्याजबी ही कर रहे हो। हमें उससे लेना-देना नहीं है।' तब सेठ कहते हैं, 'फिर भी हमारे ऊपर आपको अभाव तो रहता ही है न?' मैंने कहा, 'ना, ना। वह आपकी मान्यता छोड़ दो। क्योंकि आपको यह छुट्टी में मिला है। आपकी मदर ने भी नोनवेजिटेरिन खाया हुआ है और ब्लड ही आपका यह नोनवेजिटेरियनवाला है। अब केवल हर्ज किसे है? कि जिसके ब्लड में नोनवेजिटेरियन न हो, जिसकी माता के दूध में नोनवेजिटेरियन न हो, उसे लेने की छूट नहीं है। और आप लेते हो वह फायदेवाला-नुकसानदायक माने बिना लेते हो। फायदा या नुकसानदायक जानकर लेते नहीं।'

इसलिए माँसाहार जो करते हो, उन पर चिढ़ रखने जैसा नहीं

है। यह तो अपनी खाली कल्पना ही है। बाकी, जिन लोगों का खुद का खुराक है, उसका हमें हर्ज नहीं है।

खुद काटकर खाओगे?

प्रश्नकर्ता : पर आज तो सोसाइटी में घुस गया है इसलिए माँसाहार करते हैं।

दादाश्री : वह सब शौक कहलाता है। अपनी मदर के दूध में आया हुआ हो, तो आपको हमेशा के लिए खाने में हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मदर माँसाहार नहीं करती हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तब तो फिर आपसे किस तरह खाया जाए? आपके ब्लड में नहीं आया हो, वह आपको पचेगा किस तरह? वह आपको आज पाचन हो गया हुआ लगता है, पर वह तो अंत में नुकसान आकर खड़ा रहता है। आज आपको वह पता नहीं चलता। इसलिए न खाएँ तो उत्तम है। छूटे नहीं तो 'गलत है, छूट जाए तो उत्तम है' ऐसी भावना रखनी है।

बाकी, अपनी ये गायें कभी माँसाहार करती नहीं हैं, ये घोड़े और भैंसे भी करती नहीं हैं। और वे शौक भी नहीं रखते। बहुत भूखी हो, फिर माँसाहार रखे तब भी नहीं करतीं। इतना तो जानवरों में होता है। जब कि अभी तो इस हिन्दुस्तान के लड़के और जैनों के लड़के, जिनके माँ-बाप माँसाहार नहीं करते, वे भी माँसाहार करना सीख गए हैं। तब मैंने उनसे कहा कि 'आपको माँसाहार करना हो तो मुझे हर्ज नहीं, पर खुद काटकर खाओ। मुर्गी होती है वह आप खुद काटकर खाओ।' अरे, खून देखने की तो शक्ति नहीं और माँसाहार करता है। खून देखें तो ऐसे घबरा जाए! इसलिए भान नहीं कि क्या खा रहा हूँ यह और खून देखेगा तो उस घड़ी तुझे कँपकँपी छूट जाएगी। यह तो खून देखे न, उसका काम है। जो खून में खेले होते हैं उन क्षत्रियों का काम है। खून देखे तो घबरा जाता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : घबराहट हो जाती है।

दादाश्री : तो फिर उससे माँसाहार किया ही कैसे जाए? कोई काटे और आप खाओ वह मिनिंगलेस है। आप, वह मुर्गा कट रहा हो, उस घड़ी उसकी यदि आर्तता सुनो न, तो सारी ज़िन्दगी तक वैराग्य न जाए, इतनी आर्तता होती है। मैंने खुद सुना हुआ है। तब मुझे हुआ कि ओहोहो, कितना दुख होता होगा?!

महिमा, सात्विक आहार की

प्रश्नकर्ता : भगवान की भक्ति में शाकाहारी लोगों को और माँसाहारी लोगों को कोई रुकावट आ सकती है? उसमें आपका क्या मंतव्य है?

दादाश्री : ऐसा है न, माँसाहारी कैसा होना चाहिए? उसकी मदर के दूध में माँसाहार का दूध होना चाहिए। ऐसे माँसाहारी को भगवान की भक्ति में रुकावट नहीं आती। उसकी मदर का दूध माँसाहारी न हो और फिर माँसाहारी बन गया उसे रुकावट है। बाकी, भक्ति के लिए शाकाहारी और माँसाहारी में रुकावट बिलकुल नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो शुद्ध और सात्विक आहार बिना भक्ति के हो सकता है या नहीं होता?

दादाश्री : नहीं हो सकता। पर इस काल में तो अब क्या हो? शुद्ध सात्विक आहार, वह हमें प्राप्त होना, या वह होना बहुत मुश्किल वस्तु है और मनुष्य ऐसे काल में फिसल न जाए, कलियुग छुए नहीं, ऐसे मनुष्य बहुत कम होते हैं। और न हो तो दोस्ती पैठ जाती है या कोई ऐसा मिल जाता है न, वह उसे उल्टे रस्ते चढ़ा देता है। कुसंग पैठ जाता है।

प्रश्नकर्ता : अनजाने में अघटित भोजन लिया हो तो फिर उसका कोई असर पड़ता है क्या?

दादाश्री : सबका अनजाने में ही हो रहा है। फिर भी उसका असर होता है। जैसे अनजाने में अपना हाथ अंगारों पर पड़े तो? छोटे बच्चे को भी नहीं जलाता? छोटे बच्चा भी जल जाता है। वैसे ही यह सारा जगत् अनजाने या जान-बूझकर सबको एक-सा फल देता है। सिर्फ भोगने का तरीका अलग है। अनजानवाले को अनजाने में भुगता जाता है और जाननेवाला समझ-समझकर भुगतता है, इतना ही फर्क है।

प्रश्नकर्ता : अन्न का असर मन पर पड़ता है, वह भी निश्चित है?

दादाश्री : सबकुछ इस खुराक का ही असर है। यह खुराक खाते हैं, तब पेट के अंदर उसकी ब्रान्डी बन जाती है और ब्रान्डी से सारा दिन अभानावस्था में तन्मयाकार रहता है। तब यह सात्विक भोजन है न, उसकी भी, पर ब्रान्डी नहीं जैसी बनती है। और दूसरी बोटल की ब्रान्डी पीता है तब भान ही नहीं आता, ऐसा है। वैसे ही यह भोजन अंदर जाता है, उसकी सब ब्रान्डी ही बन जाती है। ये लड्डू हैं, सर्दियों में वसाणा (सदियों मे बनाई जानेवाली विशेष मिठाई) कहते हैं, वह सब नहीं है सात्विक! सात्विक मतलब खूब हल्का फूड और लड्डू तो कैफ़ बढ़ानेवाला है। परन्तु लोग भी अच्छा लगता हो वह स्वीकार लेते हैं, सहूलियतवाला कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : इस माँसाहार का आध्यात्मिक विचारों में कोई असर होता है क्या?

दादाश्री : अवश्य। माँसाहार, वह स्थूल भोजन है, इसलिए आध्यात्मिक की बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है। अध्यात्म में जाना हो तो लाइट फूड चाहिए कि जिससे मद चढ़े नहीं और जागृति रहे। बाकी, इन लोगों को जागृति है ही कहाँ?

वे फ़ॉरेन के साइन्टिस्ट अपनी बात नहीं समझेंगे। वे साइन्टिस्ट कहते हैं, 'ओहो! यह तो बहुत विचार करने जैसी बात है। पर हमारे मानने में नहीं आती।' तब मैंने कहा, 'अभी बहुत टाइम लगेगा। बहुत

सारी मुर्गियाँ खा गए हो इसलिए टाइम लगेगा। वह तो दाल-चावल चाहिएँगे। प्योर वेजिटेरियन की ज़रूरत है।' वेजिटेरियन फूड होता है उसका आवरण पतला होता है, इसलिए वह ज्ञान को समझ सकता है, सब आरपार देख सकता है और वो माँसाहारी को मोटा आवरण होता है।

क्या माँसाहार से नर्कगति?

प्रश्नकर्ता : कहा जाता है कि माँसाहार करने से नर्कगति होती है।

दादाश्री : वह बात बिलकुल सच्ची है और खाने की काफी कुछ चीज़ें हैं। किसलिए बकरे को काटते हो? मुर्गी को काटकर खाते हैं तो उसे त्रास नहीं होता होगा? उसके माँ-बाप को त्रास नहीं होता होगा? आपके बच्चे को खा जाए तो क्या होगा? यह माँसाहार, यह सोचे बिना का है सारा। निरी पाशवता है सारी। अविचार दशा है और हम तो विचारशील हैं। एक ही दिन माँसाहार खाने से तो मनुष्य का दिमाग़ खतम हो जाता है, पशु जैसा हो जाता है। इसलिए दिमाग़ यदि अच्छा रखना हो, तो अंडे खाना तक भी बंद कर देना चाहिए। अंडे से नीचे की सारी पाशवता ही है।

ये माँसाहार में उस जीव को मारने का दोष है न, उससे तो अंदर आवरण का दोष अधिक लगता है। मारने के दोष का तो गुनाह ठीक है, वह तो। वह गुनाह किस तरह होता है? मूल व्यापार करता है उसमें बँट जाता है। खानेवाले के हिस्से में तो कुछ ही दोष जाता है। पर यह तो खुद को अंदर आवरण करता है, इसलिए मेरी बात उसे समझने में बहुत बड़ा आवरण लाता है। ये व्यवहार की बात कुछ लोग स्पीडिली समझ जाते हैं, वह ग्रास्पिंग पावर कहलाता है।

हिसाब के अनुसार गति

प्रश्नकर्ता : पर ऐसा होता है कि हिंसक व्यक्ति अहिंसक योनि में जाए या फिर अहिंसक व्यक्ति हिंसक की योनि में जाए?

दादाश्री : हाँ, खुशी से जाते हैं। यहाँ अहिंसक हो और दूसरे भव में हिंसक हो जाए। क्योंकि उसे वहाँ उसके माँ-बाप हिंसक मिले। इसलिए फिर आसपास के संयोग मिले, उससे वैसा हो गया।

प्रश्नकर्ता : उसका कारण क्या है?

दादाश्री : ऐसा है, अहिंसक होता है न, वह जानवर में जाए तो गाय में जाता है, भैंस में जाता है। हिंसावाला यहाँ से बाघ में जाता है, कुत्ते में जाता है, बिल्ली में जाता है, जहाँ हिंसक जानवर हों वहाँ जाता है। परन्तु मनुष्य में अहिंसक हो न तब भी हिंसक के वहाँ जन्म लेता है। फिर उसके वापिस हिंसक के संस्कार पड़ते हैं। वह भी ऋणानुबंध हैं न! हिसाब है न! राग-द्वेष होते हैं, वही ऋणानुबंध। जिसके साथ राग हुआ तब फिर चिपका। उस पर द्वेष करें तब भी चिपकता है। द्वेष करें कि यह नालायक है, बदमाश है, ऐसा है, वैसा है, तो वहाँ ही जन्म होता है।

न छुए कुछ अहिंसक को

प्रश्नकर्ता : यह कुत्ता काटे उसमें कौन-सा ऋणानुबंध होगा?

दादाश्री : ऋणानुबंध के बिना तो एक राई का दाना आपके मुँह में नहीं जाता, बाहर ही गिर जाता है।

प्रश्नकर्ता : यदि कुत्ता हमें काटता है तो हमने क्या उसके साथ कर्म बांधा हुआ होगा?

दादाश्री : ना, वैसा उसके साथ कर्म बाँधा नहीं होता है। पर यह तो हमारे वहाँ मनुष्य होकर भी काटते नहीं है? ऐसा भी लोग बोलते हैं न, कि मुआ ये मुझे काटने दौड़ता है! एक व्यक्ति तो मुझे कहता है कि मेरी पत्नी तो साँपिन ही देख लो। रात को काटती है। अब वह असल में काटती नहीं है। परन्तु ऐसा कुछ बोलते हैं, कि वह हमें काटने जैसा लगता है। अब ऐसा बोला न, उसके फलस्वरूप ये कुत्ते काट खाते हैं, दूसरे कोई काट खाते हैं।

कुदरत के घर तैयार सामान होता है, सब जगह बोम्बार्डिंग करने के लिए। आपने जो कर्म बांधे हैं, वे कर्म चुकाने के लिए उसके पास सभी साधन तैयार हैं।

इसलिए यदि आपको इस जगत् में इन दुखों में से मुक्त होना हो तो कोई आपको दुख दे पर आपको सामने दुख नहीं देना चाहिए। नहीं तो थोड़ा भी दुख दोगे तो अगले जन्म में वह साँपिन होकर काटेगी, सारे हज़ारों तरह से बैर बसूले बिना रहेगी नहीं। इस दुनिया में थोड़ा भी बैर बढ़ाने जैसा नहीं है। फिर यह दुःख आते हैं, वह सब उपाधि करी किसी को दुख दिए उसके ही दुख आते हैं न! नहीं तो दुख होता ही नहीं दुनिया में।

प्रश्नकर्ता : यानी, यह जीवन तो एक शाश्वत संघर्ष ही है।

दादाश्री : हाँ, पर यदि आप अहिंसक वातावरण रखोगे तो साँप भी आपको काटेगा नहीं। सामनेवाला आप पर साँप भी डाले तब भी वह काटेगा नहीं, भाग जाएगा बेचारा। बाघ भी आपकी तरफ नहीं देखेगा। इस अहिंसा का इतना अधिक बल है कि बात न पूछो! अहिंसा जैसा कोई बल नहीं और अहिंसा जैसी निर्बलता नहीं। यह तो सब हिंसा के कारण दुख हैं, निरी हिंसा से ही दुख है।

बाकी, इस दुनिया में कोई चीज़ आपको काट सके ऐसा है ही नहीं। और जो काट सकते हैं, वही आपका हिसाब है। इसलिए हिसाब चुकता कर देना। और काट गया फिर आप मन में जो भाव करते हो कि 'इस कुत्ते को तो मार ही डालना चाहिए, ऐसा करना चाहिए, वैसा करना चाहिए।' तब वह फिर नया हिसाब शुरू किया। चाहे जैसी परिस्थिति में समता रखकर हल लाओ, अंदर थोड़ा भी विषम नहीं हो!

प्रश्नकर्ता : परन्तु उस अवस्था में तो जागृति-समता रहती नहीं है।

दादाश्री : यह संसार पार करना बहुत मुश्किल है, इसलिए यह अक्रम विज्ञान देते हैं।

गुनहगार, कसाई या खानेवाला?

प्रश्नकर्ता : एक कसाई हो, वह 'दादा' के पास ज्ञान लेने आया। 'दादा' ने ज्ञान दिया। उसका व्यापार चालू ही है और चालू ही रखना है, तो उसकी दशा क्या होगी?

दादाश्री : पर कसाई की दशा क्या बुरी है? कसाई ने क्या गुनाह किया है? कसाई को तो आप पूछो तो सही कि, 'भाई तू क्यों ऐसा काम करता है?' तब वह कहेगा कि, 'भाई, मेरे बाप-दादा करते थे, इसलिए मैं करता हूँ। मेरे पेट के लिए, मेरे बच्चों के पोषण के लिए करता हूँ।' हम पूछें, 'पर तुझे इसका शौक है?' तब वह कहता है, 'ना, मुझे शौक नहीं।'

यानी इस कसाई से तो माँसाहार खानेवाले को अधिक पाप लगता है। कसाई के लिए तो उसका काम ही है बेचारे का। उसे मैं ज्ञान दूँ। यहाँ मेरे पास आया हो तो मैं ज्ञान दूँ। वह ज्ञान ले जाए तब भी कोई हर्ज नहीं। भगवान के वहाँ इसमें हर्ज नहीं।

कबूतर, शुद्ध शाकाहारी

अपने यहाँ कबूतरखाने, यहाँ हिन्दुस्तान में होते हैं पर कौआखाने नहीं रखे? क्यों तोताखाना, चिड़ियाखाना ऐसा नहीं रखते और कबूतरखाना ही रखते हैं? कोई कारण तो होगा न? क्योंकि यह कबूतर अकेला ही बिलकुल वेजिटेरियन है, नोनवेज को छूता ही नहीं। तब अपने लोग समझे कि बरसात के दिनों में यह बेचारा क्या खाएगा? इसलिए अपने यहाँ कबूतरखाने बनाए और वहाँ फिर ज्वार डाल आते हैं। अब अंदर सड़ा हुआ दाना हो तो वह छूता नहीं है। उसके अंदर जीवजंतु है इसलिए छूता नहीं। बिलकुल अहिंसक! इन मनुष्यों ने बाउन्ड्री छोड़ी पर ये कबूतर बाउन्ड्री नहीं छोड़ते। कबूतर भी प्योर वेजिटेरियन हैं। इसलिए खोज की कि उसका ब्लड कैसा है? बहुत ही गरम। सबसे अधिक गरम ब्लड उसका है और उसमें समझ भी बहुत होती है। क्योंकि वह वेजिटेरियन, प्योर वेजिटेरियन है।

यानी मनुष्य अकेले ही फलाहारी हैं ऐसा नहीं है। परन्तु अपनी गायें-भैंसे, गधे सभी फलाहारी हैं। वह कोई ऐसी-वैसी बात है? ये गधे बहुत भूखे हो गए हों और माँसाहार डालें तो नहीं छूते। इसलिए हमें अहंकार भी करने जैसा नहीं कि, 'भाई, हम प्योर वेजिटेरियन हैं।' अरे नहीं, प्योर वेजिटेरियन तो यह गाय-भैंसे हैं, उसमें तूने क्या किया दूसरा? ये प्योरवाले तो किसी दिन अंडा भी खा आते हैं। जब कि वे तो कुछ भी नहीं। 'हम प्योर, प्योर, प्योर' करने जैसा भी नहीं और जो करते हैं उनकी टीका करने जैसा है नहीं।

अंडे खाए जा सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग तो ऐसी दलील करते हैं कि अंडे दो प्रकार के होते हैं, एक जीववाले और दूसरे निर्जीव। तो वे खाए जा सकते हैं या नहीं?

दादाश्री : फ़ॉरेन में वे लोग दलील कर रहे थे कि अहिंसक अंडे हैं! तब मैंने कहा, इस जगत् में जीव बिना का कुछ खाया ही नहीं जा सकता। निर्जीव वस्तु है न, वह खायी ही नहीं जा सकती। अंडे में यदि जीव नहीं हो तो अंडा खाया नहीं जा सकता, वह जड़ वस्तु हो गई। क्योंकि जीव नहीं हो वह जड़ वस्तु हो गई। हमें जीव को खाना हो न तो उसे ऐसे काटकर और दो-तीन दिनों तक बिगड़ नहीं जाए तब तक ही खाया जा सकता है। यह सब्ज़ी-भाजी तोड़ने के बाद कुछ समय तक ही खायी जा सकती है। फिर वह खत्म हो जाती है। यानी जीवित वस्तु को खा सकते हैं। इसलिए अंडा यदि निर्जीव हो तो खा नहीं सकते, सजीव हो तभी खाया जा सकता है। इसलिए ये लोग यदि अंडे को सजीव नहीं कहते हों तो वे बातें सब हम्बग हैं। तब किसलिए लोगों को फँसाते हो ऐसा?

उन दूसरे प्रकार के अंडेवालों ने इस जगत् में उस अंडे को किस रूप में रखा है वही आश्चर्य है। दूसरे प्रकार के अंडेवालो को

पूछा कि यह दूसरी प्रकार का जीव निर्जीव है या सजीव है, वह मुझे बताओ। निर्जीव हो तो खाया नहीं जा सकता। सारी दुनिया को मूर्ख बनाया, आप लोग किस तरह के हो फिर? जीव न हो वह खाया नहीं जा सकता हमसे, वह अखाद्य माना जाता है।

प्रश्नकर्ता : पर यह वेजिटेरियन अंडा फलता नहीं है।

दादाश्री : वह फलता नहीं है, वह डिफरेन्ट मेटर है। पर यह जीवित है।

यानी ऐसा सब ठसा दिया है, तो इन जैनों के बच्चों को कितनी मुश्किल! उस पर तो सभी बच्चे मेरे साथ झगड़े थे। फिर मैंने उन्हें समझाया कि 'भाई, ऐसे ज़रा विचार तो करो। निर्जीव हो तो हर्ज ही नहीं, पर निर्जीव तो खाया ही नहीं जा सकता।' फिर मैंने कहा, 'नहीं तो फिर बहुत यदि अक्कलमंद होओगे तो आपसे अनाज कोई भी खाया नहीं जाएगा। आप निर्जीव चीज़ खाओ।' तब निर्जीव चीज़ तो इस शरीर को काम लगती नहीं, उसमें विटामिन नहीं होते। निर्जीव जो चीज़ें हैं वे शरीर की भूख मिटाती ज़रूर हैं, पर उनमें विटामिन नहीं होते। इसलिए शरीर जीता नहीं है। ज़रुरी विटामिन नहीं मिलते न! इसलिए निर्जीव वस्तु तो चले ही नहीं। तब उन बच्चों ने स्वीकार किया कि आज से वे अंडे हम नहीं खाएँगे। समझाएँ तो लोग समझने को तैयार हैं और नहीं तो इन लोगों ने तो ऐसा घुसा दिया है कि बुद्धि फिर जाए।

ये सब गेहूँ और चावल और ये सब खाते हैं, इतनी बड़ी-बड़ी लौकियाँ खा जाते हैं, वे सब जीव ही हैं न! नहीं हैं जीव? परन्तु भगवान ने खाने की बाउन्ड्री दी है कि ये जीव हैं, वे खाना। परन्तु जो जीव आपसे त्रास पाते हो उन्हें मारो नहीं, उन्हें खाओ नहीं, उन्हें कुछ भी मत करो।

प्रश्नकर्ता : ये अंडे, वे त्रास पाते नहीं हैं, तो उन्हें खाना अच्छा है या नहीं?

दादाश्री : अंडे त्रास पाते नहीं हैं परन्तु अंडे में अंदर जो जीव रहा है न, वह बेभान अवस्था में है। पर वह फूटे तब हमें पता चलता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : तुरन्त पता चलता है। पर अंडा हिलता-डुलता तो नहीं न! तब?

दादाश्री : वह तो नहीं होता। क्योंकि वहाँ बेभानअवस्था में है। इसलिए होता नहीं। वह तो मनुष्यों का भी गर्भ चार-पाँच महीने का हो, वह अंडे की तरह ही होता है। इसलिए उसे मारना नहीं चाहिए। उसमें से फूटता है तो क्या होता है, वह हम मनुष्य समझ सकते हैं।

दूध लिया जा सकता है?

प्रश्नकर्ता : जिस तरह वेजिटेरियन अंडा नहीं खाया जा सकता, उसी तरह गाय का दूध भी नहीं पीया जा सकता।

दादाश्री : अंडा नहीं खाया जा सकता, पर गाय का दूध अच्छी तरह लिया जा सकता है। गाय के दूध का दही खाया जा सकता है, कुछ व्यक्तियों से मक्खन भी खाया जा सकता है। नहीं खाया जा सके ऐसा कुछ नहीं।

भगवान ने किसलिए मक्खन नहीं खाने का कहा था? वह अलग वस्तु है। वह भी कुछ ही व्यक्तियों के लिए ना कहा है। गाय के दूध की खीर बनाकर खाना चैन से। उसकी बासुंदी बनाओ न, तब भी हर्ज नहीं। किसी शास्त्र ने आपति उठाई हो तो मैं आपको कहूँगा कि आपत्ति नहीं उठाई है जाओ, वह शास्त्र गलत है। फिर भी ऐसा कहते हैं कि ज्यादा खाएगा तो बेचैनी होगी। वह आपको देखना है। बाकी लिमिट में खाना।

प्रश्नकर्ता : परन्तु दूध तो बछड़े के लिए कुदरत ने दिया है। हमारे लिए नहीं दिया।

दादाश्री : बात ही गलत है। वह तो जंगली गायें और जंगली भैंसें थीं न, उनका बछड़े पीए तो सारा दूध पी जाए। और अपने यहाँ तो अपने लोग गाय को खिलाकर पालते-पोषते हैं। इसलिए बछड़े को दूध पिलाना भी है और हम सबको दूध लेना भी है। और वह आदि-अनादि से ऐसा व्यवहार चालू है। और गाय को अधिक पोषण देते हैं न, तो गाय तो पंद्रह-पंद्रह लिटर दूध देती है। क्योंकि उसे जितना अच्छा खिलाते-पिलाते हैं, उतना उसका दूध नोर्मल चाहिए, उससे कई अधिक होता है। इस प्रकार से लेना चाहिए और बच्चे को भूखा मारना नहीं।

चक्रवर्ती राजा तो हज़ार-हज़ार, दो-दो हज़ार गाय रखते थें। उसे गोशाला कहते थे। चक्रवर्ती राजा दूध कैसा पीते होंगे? कि हज़ार गायें हों गोशाला में उन हज़ार गायों का दूध निकालते, वह सौ गायों को पिला देते। उन सौ गायों का दूध निकालकर दस गायों को पिला देते। उन दस गायों का दूध निकालना और वह एक गाय को पिला देते उसका दूध चक्रवर्ती राजा पीते थे।

हिंसक प्राणी की हिंसा में हिंसा?

प्रश्नकर्ता : किसी भी प्राणी को मारना वह हिंसा है। परन्तु हिंसक प्राणी कि जो दूसरे प्राणी या मनुष्य पर हिंसा कर सकता है अथवा जानहानि कर सकता है, तो उसकी हिंसा करनी चाहिए या नहीं?

दादाश्री : किसी की हिंसा करनी नहीं है ऐसा भाव रखना। और आप साँप को नहीं मारो तो दूसरा कोई मारनेवाला मिल आएगा। इसलिए आपमें साँप मारने की शक्ति नहीं हो, तो यहाँ तो मारनेवाले सब बहुत हैं, अपार हैं और मारनेवाली अन्य जातियाँ भी बहुत ही हैं। इसलिए आप अपने आप आपका स्वभाव बिगाड़ना नहीं। इसलिए हिंसा करने में फायदा नहीं है। हिंसा खुद को ही नुकसान करती है।

जीवो जीवस्य भोजनम्

प्रश्नकर्ता : मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है तो उसे पशुहिंसा नहीं करनी चाहिए। परन्तु एक प्राणी दूसरे प्राणी को खाकर जी सकता हो तो उस मनुष्य और प्राणी के बीच के बुद्धि के फर्क के कारण ऐसा भेदभाव है? प्राणी और प्राणी के बीच की हिंसा का क्या?

दादाश्री : प्राणी और प्राणी के बीच की हिंसा में यू आर नोट रिस्पोन्सिबल एट ओल। क्योंकि इस समुद्र के अंदर कोई खेत नहीं होते या कंट्रोल के अनाज की दुकानें नहीं होती। इसलिए वहाँ तो हिंसा चलती ही रहती है। मुँह खोलकर बड़ी मछलियाँ बैठी रहती हैं। तब छोटी मछलियाँ उसके पेट के अंदर ही घुस जाती हैं। है कोई परेशानी? फिर मुँह बंध कर दे तो सब खतम! पर आप उसके लिए जिम्मेदार नहीं हैं। यानी वह तो दुनिया का कानून ही है। हम मना करें, और वे सारे बकरों को खा जाएँ। बड़े जीव छोटे जीव को खाते हैं, छोटा उससे छोटे को खाता रहता है, उससे छोटा उससे छोटे को खाता रहता है। ऐसे करते-करते पूरे समुद्र का सारा जगत् चल रहा है। जब तक मनुष्य जन्म का विवेक नहीं आता तब तक सारी छूट है। अब वहाँ पर कोई बचाने जाता नहीं और हम यहाँ पर लोगों को बचाने जाते हैं।

संपूर्ण अहिंसक को नहीं कोई आँच

प्रश्नकर्ता : परन्तु ये गोलियाँ चलाते हैं अहिंसक लोगों पर।

दादाश्री : अहिंसक लोगों पर गोलियाँ चलती भी नहीं। ऐसा किसी को करना हो तब भी होता नहीं। अहिंसक जो हैं न, उन्हें सौ तरफ से गोलियाँ लेकर घेर लें न, तब भी उसे गोली छुए नहीं। यह तो हिंसकों को ही गोलियाँ छूती हैं। उसका स्वभाव है, हर एक वस्तु का।

अभी केवल अहिंसा करने में आए न तो इस संसार में लूट

लें। एक क्षण भी यदि छूट दी जाए न तो, यहाँ बैठने भी न दे। क्योंकि एक तो कलियुग है, लोगों के मन बिगड़े हुए हैं। तरह-तरह के व्यसनी हो गए हैं। इसलिए क्या नहीं करेंगे वहाँ? यानी ये गोलियाँ एक तरफ हों तो एक तरफ अहिंसा रह सकती है, नहीं तो अहिंसा का मुश्किल से पालन करवाना पड़ता है।

यद्यपि अब यह काल बदल रहा है इसे! अब काल बदल रहा है यह सब, और बहुत अच्छा काल देखोगे आप। आप अपने आप खुद देखोगे सारा।

प्रश्नकर्ता : एक संत अहिंसा पालते थे तब भी उनका खून क्यों हुआ? क्योंकि अभी आपने कहा कि अहिंसा पर गोली नहीं लगती।

दादाश्री : अहिंसक किसे कहते हैं? कि किसी की किसी भी चीज़ में हाथ डाले नहीं, वह अहिंसक। एक को कहेगा कि इसे अधिक दो, क्योंकि दीन-हीन है। भले दीन-हीन हो, फिर भी उसे अधिक दो। इसलिए इस तरफ के पक्षवाले को बुरा लगता है। इसलिए उसे रीस चढ़ती है। वह हिंसा कहलाती है। उसमें पड़ना ही नहीं। ऐसा न्याय ही नहीं करना चाहिए। अहिंसक जो है वे न्याय ही नहीं करते। न्याय करते हैं, वहाँ हिंसा है।

बाकी, वह तो जो यदि आप संपूर्ण अहिंसा पालो तो आप पर कोई गोली छोड़ सके ऐसा नहीं है। अब संपूर्ण अहिंसा मतलब क्या? पक्षपातवाला एक शब्द मुँह से बोलना भी नहीं चाहिए और बोलो तो अमुक ही शब्द बोलने चाहिए। दूसरे शब्द नहीं बोलने चाहिए। किन्हीं दो पार्टियों के बीच में पड़ना नहीं चाहिए। दो पार्टियों के बीच पड़ें तो एक की हिंसा होती है थोड़ी-बहुत!

जीवों की बलि

प्रश्नकर्ता : कुछ मंदिर में जीवों की बलि दी जाती है, वह पाप है या पुण्य है?

दादाश्री : उस बलि चढ़ानेवाले को हम पूछें कि तू क्या मानता है इसमें? तब वह कहता है, 'मैं पुण्य करता हूँ।' बकरे से पूछें कि तू क्या मानता है? तब वह कहता है, 'यह खूनी व्यक्ति है।' उन देवता को पूछें तो वे कहते हैं, 'वे धरते हैं तो हमसे ना नहीं कहा जा सकता। मैं तो कुछ लेता नहीं। ये लोग पैरों से छुआकर ले जाते हैं।' इसलिए पाप-पुण्य की बात तो जाने दो। बाकी, यह जो कुछ करते हो, वह सब खुद की जोखिमदारी है। इसलिए समझकर करना। फिर चाहे जो चढ़ाओ, कौन मना करता है आपको? परन्तु चढ़ाते समय ख्याल में रखना कि होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबिलिटी अपनी ही है, दूसरे किसी की नहीं।

अहिंसा की अनुमोदना, भावना-प्रार्थना से

अब इन गूँगे प्राणीयों की हिंसा नहीं करनी चाहिए, गौ हत्या नहीं करनी चाहिए, ऐसी भावना हमें विकसित करनी चाहिए और अपने अभिप्राय दूसरों को समझाने चाहिए। जितना अपने से हो सके उतना करना चाहिए। उसके लिए कोई दूसरे के साथ लड़ मरने की ज़रूरत नहीं है। कोई कहे कि, 'हमारे धर्म में कहा है कि हमें माँसाहार करना है।' अपने धर्म ने मना किया हो, उस कारण से झगड़ा करने की ज़रूरत नहीं है। हमें भावना विकसित करके तैयार रखनी, फिर जैसा भावना में होगा वैसी संस्कृति चलेगी।

और विश्व समष्टि का कल्याण करने की भावना, वह तो आपको सारे दिन, रात-दिन रहती है न?! हाँ, तो उस अनुसार रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उस बारे में हम प्रार्थना तो कर सकते हैं न?

दादाश्री : हाँ, हाँ, प्रार्थना करनी, ऐसी भावना करनी, उसकी अनुमोदना करनी चाहिए। कोई व्यक्ति यदि नहीं समझता हो तो हमें उसे समझाना चाहिए। बाकी यह हिंसा तो आज से नहीं, वह तो पहले से चालू ही है। यह जगत् एक रंग का नहीं है।

अब महान संत तुलसीदास थे न, तो उन्होंने कबीरसाहब की ख्याति बहुत सुनी थी। महान संत के रूप में ख्याति फैली हुई थी इसलिए तुलसीदास ने निश्चित किया कि मुझे उनके दर्शन करने जाना चाहिए। इसलिए तुलसीदास वहाँ से फिर दिल्ली आए। फिर वहाँ पर किसी से पूछा कि भाई, कबीरसाहब का घर कहाँ पर है? तब कहे, 'कबीरसाहब तो वो बुनकर है उनकी बात कर रहे हो?' उन्होंने कहा, 'हाँ।' तब उसने कहा, 'वह तो वहाँ झोंपड़ी बनाई है, वहाँ से कसाईबाड़े में होकर जाओ।' तब फिर तुलसीदास ब्राह्मण चोक्खे व्यक्ति, वे कसाईबाड़े में गए। इस तरफ बँधा हुआ था बकरा, इस तरफ मुरग़ा बँधा हुआ था। वे मुश्किल में पड़ गए। वे इस तरफ ऐसे देखें और फिर ऐसे थूंकें। ऐसे करते-करते वहाँ पहुँचे। तो मुश्किल नहीं पड़े! ये तुलसीदास प्रेक्टिस में नहीं लाए थे क्योंकि हमेशा हर एक वस्तु प्रेक्टिस में लानी चाहिए। इसलिए यह फँसाव हुआ, तब फिर तुलसीदास तो वहाँ जाकर घर में बैठे। तब कहते हैं कि कबीरसाहब तो अंदर रसोई में गए हैं। एक-दो भक्त बैठे होंगे तो उन्होंने कहा कि बैठिए साहब। उन्हें बैठाया चार पाई पर। फिर कबीरसाहब आए। कहते हैं, 'हम सत्संग करते हैं।' परन्तु पहले वह मन में था, इसलिए तुलसीदास बोल उठे कि, 'आप इतने बड़े संत। पूरे हिन्दुस्तान में आपकी ख्याति है और यहाँ कसाईबाडे में कहाँ रहते हो?' अब ये तो हाज़िर जवाब। उन्हें दोहा बनाना नहीं पड़ता था। वे बोलें वही दोहा। वे बोल उठे, 'कबीर का घर बाज़ार में, गलकटियों के पास।' गलकटियो मतलब गला काटनेवाले कसाई के नज़दीक में हमारा घर है। फिर कहते हैं, 'करेगा सो पावेगा, तू क्यों होवे उदास?' यह जो करेगा, वह उसका फल भोगेगा। तू किसलिए उदास होता है फिर?! तब तुलसीदास समझ गए कि मेरी सारी भक्ति को बेकार कर दिया, आबरू ले ली।

इस तरह आबरू न जाए वैसे रहना चाहिए। हमें भावना अच्छी रखनी चाहिए। इस काल में नहीं, अनादिकाल से ऐसा का ऐसा चलता ही आया है। रामचंद्रजी के नौकर भी माँसाहार करते थे। क्योंकि क्षत्रिय माँसाहार के बिना रहते होंगे क्या?

हमें भावना अच्छी रखनी चाहिए। इस हुल्लड़ में पड़ना नहीं, इस टोले में। क्योंकि ये लोग नासमझी से झगड़े खड़े करते हैं। उससे कुछ बदलता नहीं और नुकसान होता है। उसका अर्थ क्या है? वह कब? कि भाई अपना ही राजा हो तब अधिकार चलाए कि 'भाई, हेय आपको कुछ खास दिनों में नहीं करना है।' अभी अपने हाथ में सत्ता नहीं है और ऐसी अक्कलमंदी करने का किसने कहा है? आप अपना काम करो न! भगवान के घर कोई मरता ही नहीं। आप अपना काम कर लो और अनुमोदना रखो। कोई खराब भाव नहीं रखना।

सबसे बड़ा अहिंसक कौन?

परन्तु इन जीवों को बचाने के बदले एक ही वस्तु रखनी है कि किसी जीव को किंचित् मात्र दुख न हो। फिर मन से भी दुख न हो, वाणी से भी दुख न हो और वर्तन से भी दुख न हो! बस, उसके जैसा बड़ा अहिंसक कोई है नहीं। ऐसा भाव हो, इतनी जागृति होने के बावजूद देह से यदि जीवजंतु कुचल जाएँ, वह 'व्यवस्थित'! और नयी बचाने की बाते किसी की करनी नहीं।

अभयदान, कौन-से जीवों के लिए?

प्रश्नकर्ता : मैं तो बात करता हूँ कि तब दस वर्ष पहले से, जीवों को यदि अभयदान मिलता हो तो कंदमूल की तुरन्त ही बाधा ले ली थी हमने।

दादाश्री : अभयदान तो, वह जीव चल-फिर सकता हो ऐसा हो, वह जीव घबराता हो, भय को समझता हो, उसे अभयदान देना है। भय से त्रस्त होता हो, उसे अभयदान देना है। दूसरे लोग भय को समझते नहीं, उन्हें अभयदान कैसे होंगे?

अभयदान यानी जो जीव भयभीत होते हैं ऐसे हैं, छोटी चींटी भी हम हाथ लगाएँ न तो वह भयभीत होती है। उसे अभयदान दो।

पर यह गेहूँ का दाना, बाजरे का दाना, वह भयभीत नहीं होता है। उसे क्या निर्भय बनाना? भय समझते ही नहीं, अभयदान किस तरह देना फिर?

प्रश्नकर्ता : एकदम करेक्ट बात है।

दादाश्री : इसलिए यह समझे बिना सब चला है। वे ये चुपड़ने की पी जाते हैं। फिर कहेंगे, 'भगवान महावीर की दवाई पी गया और मर गया!' 'अरे, महावीर भगवान का फज़ीता किसलिए करता है?' अभी यही व्यापार चालू है। चुपड़ने की पी जाएँगे और फिर कहेंगे धर्म गलत है। मुए, धर्म तो गलत होतो होगा? पहले चुपड़ने की दवाई है वह पीता था?

प्रश्नकर्ता : पहले तो कुछ पता ही नहीं था।

दादाश्री : यह चुपड़ने की या पीने की है पता ही नहीं था! जो जीव भयभीत होते हैं, उन्हें त्रसकाय जीव कहा है। इसलिए यह भयसंज्ञा उत्पन्न हुई है, उसके लिए भगवान ने बात की है। दूसरों के लिए तो ऐसा ही कहा है कि पानी को फालतू ढोलना मत। नहाना, पीना, धोना, कपड़े धोना। परन्तु अनर्थ यानी आपका हेतु न हो तो ढोलना मत।

अभयदान - महादान

प्रश्नकर्ता : तो जैन धर्म में अभयदान को इतना अधिक महत्व क्यों दिया है?

दादाश्री : अभयदान को तो सभी लोगों ने महत्व दिया है। अभयदान तो मुख्य वस्तु है। अभयदान मतलब क्या कि यहाँ चिड़ियाँ बैठी हों तो वे उड़ जाएँगी, ऐसा समझकर हमें धीरे से दूसरी तरफ से चले जाना। रात को बारह बजे आए हों और दो कुत्ते सो गए हों तो अपने बूट से वे चोंककर जाग जाएँगे, ऐसा मानकर बूट पैरों में से निकालकर और धीरे-धीरे घर आना चाहिए। हमसे कोई डरे, उसे

मनुष्यता ही कैसे कहा जाए? बाहर कुत्ते भी हमसे नहीं डरने चाहिए। हम ऐसे पैर खटकाते हुए आएँ और कुत्ता कान ऐसे करके खड़ा हो तो हमें समझ जाना चाहिए कि ओहोहो, अभयदान चूक गए! अभयदान यानी कोई भी जीव हमसे भयभीत न हो। कहीं भी देखा है अभयदानी पुरुषों को? अभयदान तो सबसे बड़ा दान है।

मैं बाईस साल का था, तब कुत्ते को नहीं डरने देता था। हम निरंतर अभयदान ही देते हैं, दूसरा कुछ देते नहीं। हमारे जैसा अभयदान देना यदि कोई सीख गया तो उसका कल्याण हो जाए! भय का दान देने की तो लोगों को प्रेक्टिस पहले से ही है, नहीं? 'मैं तुझे देख लूँगा' कहेगा। तो वह अभयदान कहलाएगा या भय का दान कहलाएगा?

प्रश्नकर्ता : तो इन जीवों को बचाते हैं वह अभयदान नहीं है?

दादाश्री : वह तो बचानेवाले को जबरदस्त गुनाह है। वह तो खाली अहंकार करता है। भगवान ने तो इतना ही कहा था कि आप अपनी आत्मा की दया पालना। बस, इतना ही कहा हुआ है पूरे शास्त्र में कि भावदया पालना। दूसरी दया के लिए आपको नहीं कहा है। और बिना काम के हाथ में लोगे तो गुनाह होगा।

वह है बचाने का अहंकार

यह तो सब ऐसा ही समझते हैं कि हम बचाते हैं इसलिए ये जीव बचते हैं। फिर अपने लोग तो कैसे हैं? घर पर माँ को गालियाँ दे रहा होता है और बाहर है तो बचाने निकला होता है!

इन लोगों को समुद्र में भेजना चाहिए। अंदर समुद्र में तो सब सब्ज़ी-भाजी और अनाज सब उगता होगा नहीं? ये मछलियाँ खाती होंगी, वह?! तब यहाँ से हम अनाज भेजते होंगे, नहीं? क्यों चना और वे सब डालकर खिलाते नहीं हैं? तो क्या है उनका भोजन? इतनी-इतनी छोटी-छोटी मछलियाँ होती हैं, उन्हें इतनी बड़ी मछलियाँ निगलती रहती हैं। इतनी बड़ी को फिर उससे बड़ी होती है, वह

निगला करती है। ऐसे निगलते ही रहते हैं चैन से। और माल पैदा ही होता रहता है एक तरफ। अब वहाँ अक्कलवाले को बैठाया हो तो क्या दशा हो?

जगत् में कैसी मान्यता चल रही है? 'हम बचा रहे हैं' कहेंगे और कसाई के ऊपर द्वेष करते हैं। उस कसाई से हम पूछें कि 'तू ऐसा नालायक व्यापार करता है?' तब वह कहे, 'क्यों साहब, मेरे व्यापार को नालायक कहते हो? मेरा तो यह बाप-दादाओं का पीढ़ियों से व्यापार चलता आया है। हमारी दुकान है यह तो।' इसलिए ऐसा कहते हैं हमें। यानी यह उनकी पुश्तैनी कहलाती है। हम कुछ बोलें तो उसे ऐसा लगता है कि 'यह अक्कल बिना का मनुष्य कुछ समझता नहीं।'

यानी जो माँसाहार करते हैं वे ऐसा अहंकार नहीं करते कि 'हम मारेंगे और ऐसे मारेंगे।' यह तो अहिंसावाला बहुत अहंकार करता है कि 'मैं बचाता हूँ।' अरे बचानेवाले को तो घर पर नब्बे वर्ष के पिता हैं, मरने की तैयारी है, उन्हें बचाओ न! पर ऐसा कोई बचाता है?

प्रश्नकर्ता : कोई नहीं बचाता।

दादाश्री : तब ऐसा क्यों बोलते हो कि मैंने बचाया और मैंने ऐसा किया?! कसाई के हाथ में भी सत्ता नहीं है। मारने की सत्तावाला कोई जन्मा ही नहीं। ये तो फालतू का इगोइज़म करते हैं। यह कसाई कहता है कि, 'अच्छे-अच्छे जीव काटे हैं।' वह उसका इगोइज़म करता है, तब रियल क्या कहता है?! इस मारनेवाले का मोक्ष होगा या बचानेवाले का मोक्ष होगा? दोनों का ही मोक्ष नहीं है। दोनों इगोइज़मवाले हैं। यह बचाने का इगोइज़म करता है और वह मारने का इगोइज़म करता है। रियल में नहीं चलेगा, रिलेटिव में चलेगा।

वे दोनों अहंकारी हैं

भगवान कोई कच्ची माया नहीं है। भगवान के वहाँ तो मोक्ष

में जाने के लिए कानून कैसा है? एक शराब पीने का अहंकार करता है और एक शराब नहीं पीने का अहंकार करता है। उन दोनों को भगवान मोक्ष में प्रवेश नहीं करने देते। वहाँ कैफ़ी को प्रवेश नहीं करने देते। वहाँ निष्कैफ़ी को आने देते हैं।

इसलिए जो लोग दारू नहीं पीते और उसकी मन में झूठी *घेमराजी* (खुद की बहुत सीमित क्षमता हो परंतु सबकुछ कर सके ऐसा घमंड) रखते हैं, वह तो भयंकर गुनाह है। वह तो दारू पीनेवाले से भी गया-बीता है। दारू पीता हो वह तो बेचारा ऐसे ही कहता है कि, 'साहब, मैं तो सबसे मूर्ख इन्सान हूँ, गधा हूँ, नालायक हूँ।' और दो मटके पानी डालें न, तब भी उसका कैफ़ उतर जाए। पर इन लोगों को मोह का जो दारू चढ़ा हुआ है, वह अनादि जन्मों से उतरता ही नहीं, और 'मैं कुछ हूँ, मैं कुछ हूँ' करते रहते हैं।

उसका आपको एक उदाहरण समझाऊँ। एक छोटे गाँव में एक जैन सेठ रहते थे। स्थिति साधारण थी। उनका एक बेटा तीन वर्ष का और एक डेढ़ वर्ष का। अचानक प्लेग फैला और माँ-बाप दोनों मर गए। दोनों बच्चे रह गए। फिर गाँववालों को पता चला, वे सब इकट्ठे हुए कि अब इन बच्चों का क्या करें? हम उसका रास्ता निकाले। कोई बच्चों का पालक निकले तो अच्छा। एक सुनार था, उसने बड़े लड़के को लिया। और दूसरे को कोई लेनेवाला ही नहीं था, इसलिए एक निचले वर्णवाला कहता है, 'साहब, मैं पालक बनूँ?' तब लोगों ने कहा, 'अरे, इस जैन सेठ का बेटा और तू निचले वर्ण का।' पर दूसरे लोग बोले, 'वह नहीं लेगा तो कहाँ रखोगे? मर जाए उससे तो कम से कम जीएगा तो सही। तो वह क्या बुरा है?' इस तरह दोनों बड़े हुए। पहला सुनार के वहाँ बड़ा हुआ और बीस-बाइस वर्ष का हुआ तब कहता है, 'दारू पीना गुनाह है, माँसाहार करना, वह गुनाह है।' जब कि दूसरा अठारह-बीस वर्ष का हुआ तब कहता है, 'दारू पीना चाहिए, दारू बनाना चाहिए, माँसाहार करना चाहिए।' अब ये दो भाई एक भिंडी के दो दाने, क्यों ऐसे अलग-अलग बोले?

प्रश्नकर्ता : संस्कार।

दादाश्री : हाँ, संस्कार, अलग-अलग पानी का सिंचन हुआ! इसलिए फिर किसी ने कहा कि, 'यह तो जैन कहलाए ही नहीं न!' एक संत होंगे, उनसे पूछा कि 'साहब, ये दो भाई थे और ऐसा अलग-अलग कहते हैं। इनमें से मोक्ष किसका होगा?' तब संत कहते हैं, 'इसमें मोक्ष की बात करने की रही ही कहाँ? वह दारू नहीं पीने का अहंकार करता है, माँसाहार नहीं करने का अहंकार करता है। और यह दारू पीने का अहंकार करता है, माँसाहार करने का अहंकार करता है। इसमें मोक्ष की बात ही कहाँ रही? मोक्ष की बात तो अलग ही है। वहाँ तो निरअहंकारी भाव चाहिए।' ये तो दोनों अहंकारी हैं। एक इस खड्डे में पड़ा है, दूसरा दूसरे खड्डे में पड़ा है। भगवान दोनों को अहंकारी कहते हैं।

सिर्फ अहिंसा के पुजारियों के लिए ही

लोग जो मानते हैं वैसा भगवान ने नहीं कहा है, भगवान बहुत समझदार पुरुष! भगवान ने ऐसा कहा है कि इस वर्ल्ड में कोई ऐसा है नहीं कि जो किसी को मार सके। क्योंकि साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है। किस तरह मार सकता है? सारे कितने ही संयोग इकट्ठे हों तब वह मर जाता है! और फिर साथ-साथ ऐसा भी कहा है कि यह बिलकुल गुप्त रखने जैसी बात है। तब कोई कहेगा, 'साहब, ऐसा भी बोलते हैं और ऐसा भी बोलते हैं?' तब भगवान कहते हैं, 'देखो, यह बात समझदार व्यक्तियों के लिए है, जो अहिंसा के पुजारी हैं, उनके लिए ही यह वाक्य कहते हैं। और हिंसा के पुजारी हैं, उनके लिए यह नहीं कहते। नहीं तो वह भावना करेगा कि मुझे इन लोगों को मार डालना है। यानी इस भव में तो वह नहीं होनेवाला, पर यह भावना करेगा तो आनेवाले भव में फल आएगा।' इसलिए यह बात किसके पास करनी है? यह अहिंसा के पुजारियों के पास ही बात करने को कहा है।

'यह' सबके लिए नहीं है

भगवान ने कहा है कि मारने का अहंकार मत करना और बचाने का अहंकार भी मत करना। तू मारेगा तो तेरा आत्मभाव मरेगा, बाहर कोई मरनेवाला नहीं है। इसलिए उससे खुद की हिंसा होती है, दूसरा कुछ नहीं। आत्मा कोई ऐसे मरता नहीं, पर यह तो खुद, खुद की हिंसा कर रहा है। इसलिए भगवान ने मना किया है। और तू बचाएगा वह झूठा अहंकार कर रहा है। वह भी तू आत्मभाव की हिंसा ही कर रहा है। इसलिए ये दोनों गलत कर रहे है। यह सब तूफ़ान छोड़ न। बाकी कोई किसी को मार सकता ही नहीं। पर भगवान ने यदि ऐसा साफ-साफ कहा होता कि मार सकता ही नहीं, तो लोग अहंकार करते कि मैंने मारा! यह सब किसी में ताकत नहीं है। बगैर ताकत का यह जगत् है। व्यर्थ ही बिना काम के विकल्प करके भटका करते हैं। ज्ञानियों ने देखा है। यह जगत् किस तरह चला करता है। इसलिए ये सब गलत विकल्प पैठ गए हैं, वहाँ फिर निर्विकल्प किस तरह से हों फिर?

यानी ये सारे जीव हैं न, वे कोई किसी को मार सकते ही नहीं। मार सकने की किसी में शक्ति ही नहीं। फिर भी भगवान बोले कि हिंसा छोड़कर और अहिंसा में आओ। वे क्या कहते हैं कि मारने का अहंकार छोड़ो। दूसरा कुछ छोड़ना नहीं है, मारने का अहंकार छोड़ना है। आपके मारने से मारा नहीं जाता, तो फिर अहंकार किसलिए करते हो बिना काम के? अहंकार करके ज्यादा लपेट में आओगे, भयंकर जोखिम मोल लोगे। उस जीव को उसके निमित्त से मरने दो न! वह मरनेवाला ही है, परन्तु आप अहंकार किसलिए करते हो? इसलिए अहंकार बंद करवाने के लिए भगवान ने अहिंसा की प्रेरणा दी। मारने का जो अहंकार है, उसे छुड़वाने के लिए ये सब बातें करी।

प्रश्नकर्ता : इतना पचाना साधारण मनुष्य के लिए ज़रूरत से ज्यादा ज्ञान नहीं कहलाता?

दादाश्री : ना, वह पचे ऐसा नहीं। इसलिए खुला नहीं किया। सभी को ऐसा ही कहा कि आप बचाओ, नहीं तो यह मर जाएगा।

मारने-बचाने का गुप्त रहस्य

अब 'इसने जीव को मारा, इसने ऐसा किया, इसने बचाया' वह सब व्यवहार मात्र है। करेक्ट नहीं है यह। रियल में क्या है? कोई भी जीव किसी भी जीव को मार सकता ही नहीं। उसे मारने में तो सभी साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स इकट्ठे हों, तब ही मरे। अकेला कोई व्यक्ति स्वतंत्र ऐसे मार नहीं सकता है। अब एविडेन्स इकट्ठे हों तभी मरे और एविडेन्स अपने हाथ में है नहीं। इसलिए कोई भी जीव किसी भी जीव को बचा सकता ही नहीं। वह तो साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हो तो ही बचे, नहीं तो बचे नहीं। यह तो खाली बचाने का अहंकार करता है। पर साथ-साथ ऐसा कहा कि तू मन में से भाव निकाल दे कि मुझे मारना है। क्योंकि भाव एक एविडेन्स है। वे दूसरे एविडेन्स इकट्ठे होते हैं और यह एविडेन्स इकट्ठा हो तब कार्य हो जाएगा। मतलब उनमें से 'वन ऑफ द एविडेन्स' 'खुद का' भाव है। उसके कारण सभी एविडेन्स का 'खुद' इगोइज़म करता है।

मरणकाल में ही मरण

यह तो हम सूक्ष्म बात कहना चाहते हैं कि किसी जीव को उसका मरणकाल का संयोग हुए बिना किसी से मारा नहीं जा सकता। अभी सात बकरे हों न, तब वह दो बेचता है और, वह जिसका मरणकाल आया हो, उसे ही बेचता है। अरे, सात में से ये दो तुझे प्यारे नहीं थे? वे भी अच्छे ही हैं बेचारे, तो तू उन्हें क्यों दे देता है? और बकरा भी उसके साथ खुश होकर जाता है। क्योंकि मरणकाल आया है इसलिए! फिर वहाँ उसे कसाईखाने में रंगते-करते हैं न, तो वह अंदर खुश भी होता है। वह समझता है कि दिवाली आई। ऐसा जगत् है। परन्तु यह सब समझने जैसा है।

इसलिए उसके मरणकाल के बिना बाहर तो कोई मरता नहीं है। परन्तु तू मारने का भाव करता है. इसलिए तुझे भावहिंसा लगती है और वह तेरे आत्मा की हिंसा हो रही है। तू अपनी खुद की हिंसा कर रहा है। बाहर का तो वह मरनेवाला होगा तब मरेगा। उसका टाइम आएगा, उसका संयोग आ मिलेगा और वह तो साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हैं। कितने सारे एविडेन्स इकट्ठे हों और वे तो आँखों से दिखते नहीं ऐसे एविडेन्स इकट्ठे हों, तब वह जीव मरता है। इसलिए उसे मन में ऐसा लगता है कि 'मैंने मार डाला।' 'अरे, तेरी मारने की इच्छा तो नहीं और किस तरह मारा उसे?' तब कहेगा, 'परन्तु मेरा पैर उसके ऊपर पड़ा न?' 'अरे, पैर तेरा है? तेरे पैर को पक्षाघात नहीं होता?' तब कहे, 'पक्षाघात तो पैर को होता है।' तो वह पैर तेरा नहीं है। तेरी वस्तु को पक्षाघात नहीं होता। तू पैर के ऊपर तेरा मालिकीपन रखता है, पर झूठी मालिकी है। किसी ज्ञानी पुरुष को पूछ तो आ, कि यह मेरा है या पराया है? वह पूछ न! पूछे तो ज्ञानी पुरुष समझा दें कि भाई, यह सब नहीं है तेरा। यह पैर भी पराया, यह दूसरा सब पराया और यह तेरा। ऐसे ज्ञानी पुरुष सब स्पष्टता कर देंगे। ज्ञानी पुरुष के पास सर्वे करवा ले। यह तो लोगों के पास सर्वे करवाता है। पर यह सर्वे करनेवाले तो पागल हैं। वे तो पराई वस्तु को ही मेरी कहते हैं। इसलिए सच्चा सर्वे हुआ ही नहीं। ज्ञानी पुरुष सर्वे करके अलग कर देते हैं और लाइन ऑफ डिमार्केशन डाल देते हैं कि यह इतना भाग आपका, यह इतना भाग पराया। जो कभी भी अपना नहीं होता, वह पराया कहलाता है। चाहे जितनी माथाकूट करें, फिर भी वह अपना नहीं होता।

अब मरणकाल किसी के हाथ की बात नहीं है। पर भगवान ने यह बताया नहीं है कि इसके पीछे कॉज़ेज़ हैं। कुछ ज्ञान बताए नहीं जा सकते। इस प्रकार बात भगवान ने यदि विस्तारपूर्वक की होती तो लोगों को बहुत समझ में आ जाता। फिर भी यह बात भगवान ने की है, पर लोगों को समझ में नहीं है। भगवान ने सारी

ही स्पष्टता की है। पर वह सब सूत्रों में है। उन लाख सूत्रों को पिघलाएँ तब इतना पिघले। भगवान जो बोले, वह सोने के रूप में निकला और गौतम स्वामी सब सूत पर चढ़ाते रहे। अब जब कोई गौतम स्वामी जैसा हो, तब वापिस उन सूत्रों में से सोना निकाले। पर वह गौतम स्वामी जैसे आएँ कब और सोना निकले कब और अपने दिन फिरें कब?

'मारना नहीं है' का निश्चय करो

अब कितने ही लोगों ने निश्चय किया है कि 'हमें नाम मात्र की भी हिंसा करनी नहीं है। किसी जीव जंतु को मारना नहीं है। ऐसा निश्चय किया हो तो फिर उससे जीवजंतु कोई मरने के लिए फालतू ही नहीं होता। उसके पैर के नीचे आए तब भी बचकर चला जाता है। और 'मुझे जीव मारने ही हैं' ऐसा जिसने निश्चय किया है, वहाँ मरने के लिए सब तैयार हैं।

बाकी, भगवान ने कहा है कि इस जगत् में कोई मनुष्य किसी भी जीव को मार सकता ही नहीं। तब कोई कहे, 'हे भगवान, ऐसा क्या बोलते हैं? हमने मारते हुए सबको देखा है न!' तब भगवान कहते हैं, 'नहीं, उसने मारने के भाव किए हैं और इन जीवों का मरणकाल आ रहा है। इसलिए इसका मरणकाल आए तब उसका संजोग मिल जाता है, मारने के भाववाले से मिल जाता है। बाकी मार तो नहीं ही सकता है। पर मरणकाल आए तो मरते हैं और तब ही वह मिल आता है। यह बात बहुत झीनी है। वर्ल्ड यदि समझा होता न आज, तो आश्चर्यचकित हो जाता!

प्रश्नकर्ता : ट्रेन में एक्सिडन्ट होता है और ट्रेन के नीचे आदमी मर जाता है। तो उसमें ट्रेन ने कौन-सा निश्चय किया?

दादाश्री : ट्रेन को निश्चय की ज़रूरत ही नहीं होती। यह तो जिसका मरणकाल मिल आता है न, तब वह कहेगा कि, 'हम चाहे जिस तरह से मरेंगे।' तो 'वह परवाह ही नहीं' ऐसा भाव हो

तो वैसा मरण आता है। उसने जैसे भाव किए हों, वैसे भावों से ही उसका हिसाब बनता है। परन्तु मरणकाल आए बिना किसी से मरता नहीं।

इसलिए इसमें सेन्टेन्स क्या समझना है? कि उस जीव का मरणकाल नहीं आया हो, तब तक कोई मार सकता ही नहीं। और मरणकाल किसी के हाथ में नहीं है।

नहीं 'मरता' कोई भगवान की भाषा में

प्रश्नकर्ता : परन्तु यह जो हिंसा नहीं करनी वह दैवीगुण है या नहीं? यानी हिंसा करना वह गुनाह है या नहीं?

दादाश्री : मैं आपको गुप्त बात बता देता हूँ?! इन सबके सामने, कोई दुरुपयोग करे ऐसा नहीं इसलिए कह रहा हूँ।

इस जगत् में भगवान की दृष्टि से कोई मरता ही नहीं। भगवान की भाषा में कोई मरता ही नहीं, लोकभाषा में मरता है। इस भ्रांति की भाषा में मरता है। यह खुली बात कही। कभी भी बोला नहीं। आज आपके सामने कह रहा हूँ।

भगवान के ज्ञान में जो बरतता है, वह मेरे ज्ञान में बरतता है, वह यह है कि इस जगत् में कोई जीवित है नहीं और कोई मरा ही नहीं। अभी तक यह दुनिया चल रही है, तब से कोई मरा ही नहीं। जो मरता हुआ दिखता है वह भ्रांति है। और जन्म लेता हुआ दिखता है वह भ्रांति है। यह भगवान की भाषा की खुली हक़ीक़त कह दी मैंने। अब आपको पुरानी समझ को पकड़कर रखना हो तो पकड़े रहना और नहीं पकड़ना हो तो नयी को पकड़ना। यह हमारी बात समझ में आई आपको?

प्रश्नकर्ता : बात समझ में आई, पर आपने बहुत ही अस्पष्ट रूप से कही है।

दादाश्री : हाँ, मतलब भगवान की भाषा में कोई मरता ही

नहीं। हज़ारों व्यक्ति वहाँ कट गए हों। वह महावीर भगवान जानें, तो महावीर भगवान को कोई असर नहीं होता। क्योंकि वे जानते हैं कि कोई मरता ही नहीं। यह तो लोगों के लिए मरते हैं, वास्तव में मरता नहीं है। यह दिखता है, वह सब भ्रांति है। मुझे कोई भी कभी भी मरता हुआ दिखा ही नहीं न! आपको दिखता है, उतनी शंकाएँ आपको हुआ करती हैं कि 'क्या हो जाएगा, क्या हो जाएगा?' तब मैं कहूँ कि, 'भाई, कुछ होगा नहीं, तू मेरी आज्ञा में रहना।'

इसलिए आज सूक्ष्म बात मैंने कर डाली कि भगवान की भाषा में कोई मरता नहीं। फिर भी भगवान से लोगों ने कहा कि, 'भगवान, यह ज्ञान खुला ही कर दो न!' तब भगवान कहते हैं, 'ना, खुले रूप से कहा जाए ऐसा नहीं है। लोग फिर ऐसा ही समझेंगे कि कोई मरता ही नहीं। इसलिए वे चाहे उसे खा जाएँ, वैसे भाव करेंगे, भाव बिगाड़ेंगे।' लोगों के भाव बिगड़ेंगे इसलिए भगवान ने यह ज्ञान खुला नहीं किया। अज्ञानी लोगों को भाव बिगाड़ने में समय नहीं लगता और भाव बिगड़े यानी 'खुद' वैसा हो जाए। क्योंकि जो है वह खुद ही है, उसका कोई ऊपरी ही नहीं।

इसलिए जब तक भ्रांति है, तब तक ऐसा बोला ही नहीं जा सकता कि भगवान की भाषा में कोई मरता नहीं। यह तो आपने पूछा ठीक से, तब मुझे खुला करना पड़ा। उसमें अपने 'महात्माओं' के बीच कहने में हर्ज नहीं है। ये 'महात्मा' दुरुपयोग करें ऐसे नहीं हैं। आप 'भगवान की भाषा में कोई मरता नहीं है' ऐसा वहाँ सबको कह दोगे?

प्रश्नकर्ता : मुझे किसी का डर नहीं। मैं तो हिम्मत से कहूँ।

दादाश्री : मत कहना। यह ज्ञान खुला किया जाए ऐसा नहीं है। यह भगवान की भाषा का ज्ञान तो जो 'शुद्धात्मा' हो गया है, उसे ही जानने जैसा है। दूसरों को जानने जैसा यह ज्ञान नहीं है। दूसरे लोगों के लिए यह पोइज़न है।

भारत में भावहिंसा भारी

प्रश्नकर्ता : अहिंसा का व्यापक प्रचार करने में बहुत समय लगेगा?

दादाश्री : बहुत समय लगे तब भी प्रचार पूरापूरा नहीं होगा। क्योंकि संसार मतलब क्या? हिंसात्मक ही रुख़ सारा। इसलिए वह तो मेल नहीं खाएगा। ये तो हिन्दुस्तान में थोड़ा-बहुत अहिंसा पालने के लिए तैयार होते हैं। बाकी सब लोग तो अहिंसा समझते ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : पर जीवों को बचाना चाहिए, उसके पीछे सूक्ष्म अहिंसा का भाव है?

दादाश्री : वह बचाना मतलब सूक्ष्म नहीं, स्थूल अहिंसा है। सूक्ष्म तो समझेंगे नहीं। सूक्ष्म अहिंसा किस तरह समझेंगे वे? इन लोगों को स्थूल भी अभी समझ में नहीं आता न, तो सूक्ष्म कब समझ में आएगा? और यह स्थूल अहिंसा तो उनके खून में पड़ी हुई है न, इसलिए ये छोटे प्रकार के जीवों की अहिंसा का ध्यान रखते हैं। बाकी, ये सब लोग खुद के घर में पूरा दिन हिंसा ही किया करते हैं, सभी, अपवाद बिना!

प्रश्नकर्ता : इन वेस्टर्न कंट्रीज़ में भी निरंतर हिंसा ही किया करते हैं। खाने में, पीने में, हरेक कार्य में। घर में भी हिंसा। मक्खियाँ मारनी, मच्छर मारने, बाहर लॉन में भी हिंसा, दवाईयाँ छिड़कनी, जंतु मार डालने, बाग-बगीचे में भी हिंसा, तो वे लोग किस तरह छूटें?

दादाश्री : अरे, उनकी हिंसा से तो इस हिन्दुस्तान के लोग ज्यादा हिंसा करते हैं। दूसरी हिंसा के बदले यह हिंसा बहुत खराब। सारा दिन आत्मा की ही हिंसा करते हैं। भावहिंसा कहते हैं उसे।

प्रश्नकर्ता : ये लोग तो खुद के आत्मा की ही हिंसा करते हैं, पर वे लोग तो दूसरों की आत्मा की हिंसा करते हैं।

दादाश्री : ना। ये लोग तो सभी के आत्मा की हिंसा करते हैं।

जो-जो मिलता है, उन सबकी हिंसा करते हैं। काम ही इनका उल्टा है। इसलिए तो वे लोग सुखी हैं न! दूसरा, ऐसे जिस-तिस को दुख देने के विचार ही नहीं और 'आइ विल हेल्प यू, आई विल हेल्प यू' किया करते हैं और अपने यहाँ तो मतलब रखते हैं, 'मुझे काम आएगा' तो हेल्प करते हैं, नहीं तो नहीं करते। पहले हिसाब निकालकर देख लेते हैं कि मुझे काम आएगा! ऐसा हिसाब निकालते हैं या नहीं निकालते?

इसलिए भगवान ने भावहिंसा को बहुत बड़ी हिंसा कही है और वैसा सब पूरा हिन्दुस्तान भावहिंसा कर रहा है।

प्रश्नकर्ता : पर यहाँ तो अहिंसा पर सबसे अधिक ज़ोर देते हैं।

दादाश्री : फिर भी सबसे अधिक हिंसा यहाँ के लोगों की है। क्योंकि सारा दिन कलह-कलह और कलह ही किया करते हैं। उसका क्या कारण? कि यहाँ के लोग अधिक जागृत हैं। फिर भी आज के लड़के जो उल्टे रास्ते चल पड़े हैं, उनको ऐसी भावहिंसा बहुत नहीं है बेचारों को। क्योंकि वे माँसाहार करते हैं और सब करते हैं इसलिए जड़ जैसे हो गए हैं। इसलिए जड़ में भावहिंसा बहुत नहीं होती। बाकी, अधिक जागृत हो वहाँ केवल भावहिंसा होती है। इसलिए सारा दिन कलह, कलह.... प्याले फूटे तब भी कलह! कुछ हो गया तब भी कलह!

भाव स्वतंत्र, द्रव्य परतंत्र

प्रश्नकर्ता : फिर भी इन्हें चाहे जैसे, पर अहिंसा तो हुई ही न?

दादाश्री : भाव है वह स्वतंत्र हिंसा है और द्रव्य है वह परतंत्र हिंसा है। वह खुद के काबू में नहीं है। इसलिए यह परतंत्र अहिंसा पालते हैं। आज उनका वह पुरुषार्थ नहीं है।

इसलिए यह जो अहिंसा है, वह स्थूल जीवों के लिए अहिंसा है, पर वह गलत नहीं है। जब कि भगवान ने क्या कहा हुआ है कि यह अहिंसा आप बाहर पालते हो, वह संपूर्ण अहिंसा पालो, सूक्ष्म

जीव या स्थूल जीव सबके लिए अहिंसा पालो, पर आपके आत्मा की भावहिंसा नहीं हो, वह पहले देखो। यह तो निरंतर भावहिंसा ही हो रही है। अब यह भावहिंसा लोग मुँह से बोलते ज़रूर है, पर भावहिंसा किसे कहते हैं, वह समझना चाहिए न? मेरे पास बातचीत हो तो मैं समझाऊँ।

भावहिंसा किसीको दिखती नहीं है, और सिनेमा की तरह, सिनेमा चलता है न, वह हम देखते हैं, ऐसे दिखाई दे वह सब द्रव्यहिंसा है। भावहिंसा में इतना सूक्ष्म बरतता है और द्रव्यहिंसा तो दिखती है, प्रत्यक्ष, मन-वचन-काया से जो जगत् में दिखता है, वह द्रव्यहिंसा है।

बचो भावहिंसा से प्रथम

इसलिए भगवान ने अहिंसा अलग प्रकार की कही कि फर्स्ट अहिंसा कौन-सी? आत्महत्या नहीं हो। पहला अंदर से भावहिंसा नहीं हो उसे देखने को कहा है, उसके बदले कहाँ से कहाँ चला गया। ये तो भावहिंसा सब हुआ ही करती है, निरंतर भावहिंसा हुआ करती है। इसलिए शुरूआत में भावहिंसा बंद करनी है और द्रव्यहिंसा तो किसी के हाथ में ही नहीं है। फिर भी ऐसा बोलना नहीं चाहिए। ऐसा बोलोगे तो जोखिम आएगा। बाहर सबके सामने नहीं बोलना है। समझदार व्यक्ति को ही कहा जा सकता है। इसलिए वीतरागों ने सब खुला नहीं किया। बाकी द्रव्यहिंसा किसी के हाथ में ही नहीं, किसी जीव के ताबे में है ही नहीं। पर यदि ऐसा कहा जाए न तो लोग आनेवाला भव बिगाड़ेंगे। क्योंकि भाव किए बिना रहते नहीं न! कि 'ऐसा हाथ में है ही नहीं, अब तो मारने में दोष ही नहीं न!' वह भावहिंसा ही बंद करनी है। मतलब वीतराग कितने समझदार! एक अक्षर भी इस बारे में लिखा है? देखो, इतना भी लीकेज होने दिया! तीर्थंकर कितने समझदार पुरुष थे, जहाँ पैर रखें वहाँ तीर्थ!

फिर भी द्रव्यहिंसा बंद करें, तभी भावहिंसा रखी जा सकती है ऐसा है वापिस। फिर भी भावहिंसा की मुख्य क़ीमत है। इसलिए जीवों

की 'हिंसा-अहिंसा' में भगवान ने पड़ने को नहीं कहा है, इस तरह। भगवान कहते हैं, 'तू भावहिंसा मत करना। फिर तू अहिंसक माना जाएगा।' इतना शब्द भगवान ने कहा है।

ऐसे होती है भाव अहिंसा

इसलिए सबसे बड़ी हिंसा भगवान ने कौन-सी कही? कि 'इस व्यक्ति ने किसी जीव को मार डाला, उसे हम हिंसा नहीं कहते पर इस व्यक्ति ने जीव को मारने का भाव किया, इसलिए उसे हम हिंसा कहते हैं।' बोलो, अब लोग क्या समझते हैं? 'इसने जीव को मार डाला, इसलिए इसे ही पकड़ो।' तब कोई कहेगा, 'इसने जीवों को मारा तो नहीं न?' मारे नहीं हो उसकी भी आपत्ति नहीं है। परन्तु भाव किया न उसने, कि जीव मारने चाहिए, इसलिए वही गुनहगार है। और जीव को तो 'व्यवस्थित' मारता है। मारनेवाला तो खाली अहंकार करता है कि मैंने मारा। और यह भाव करता है, वह तो खुद मारता है।

आप कहो कि जीवों को बचाने जैसा है। फिर बचे या नहीं बचे, उसके जिम्मेदार आप नहीं हैं। आप कहो कि 'इन जीवों को बचाने जैसा है', आपको इतना ही करना है। फिर हिंसा हो गई, उसके जिम्मेदार आप नहीं! हिंसा हुई उसका पछतावा, उसका प्रतिक्रमण करना उससे जिम्मेदारी सब खतम हो गई।

अब इतनी अधिक सूक्ष्म बातें किस तरह मनुष्य को समझ में आए? उसकी बिसात क्या? दर्शन कहाँ से इतना अधिक लाए? ये मेरी बातें सारी वहाँ ले जाए तो उल्टा समझे वापिस। पब्लिक में ऐसा हम नहीं कहते। पब्लिक में कहा नहीं जा सकता न! आपको समझ में आता है?

भावअहिंसा यानी मुझे किसी भी जीव को मारना है, ऐसा भाव कभी भी नहीं होना चाहिए और किसी भी जीव को मुझे दुख देना है, ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए। मन-वचन-काया से किसी जीव को किंचित् मात्र दुख न हो, ऐसी भावना ही सिर्फ करनी है। क्रिया

नहीं भावना ही करनी है। क्रिया में तो तू किस तरह बचानेवाला है? श्वासोश्वास में कितने ही लाखों जीव मर जाते हैं और यहाँ जीवों की टोलियाँ टकराती हैं वे टकराने से ही मर जाते हैं। क्योंकि हम तो उनके लिए बड़े-बड़े पत्थरों जैसे दिखते हैं। उन्हें ऐसा कि यह पत्थर टकराया।

सबसे बड़ी आत्महिंसा, कषाय

जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वह आत्महिंसा है। और दूसरी जीवों की हिंसा है। भावहिंसा का अर्थ क्या? तेरी खुद की जो हिंसा होती है, ये क्रोध-मान-माया-लोभ वे तुझे खुद को बंधन करवाते हैं, तो खुद पर दया खा। पहले खुद की भावअहिंसा और फिर दूसरों की भावअहिंसा कहा है।

इन छोटे जंतुओं को मारना, वह द्रव्यहिंसा कहलाती है। और किसी को मानसिक दुख देना, किसी पर क्रोध करना, गुस्सा होना, वह सब हिंसक भाव कहलाता है, भावहिंसा कहलाता है। लोग चाहे जितनी अहिंसा पाले पर अहिंसा कुछ इतनी आसान नहीं कि जल्दी पाली जा सके। और दरअसल हिंसा ही यह क्रोध-मान-माया-लोभ है। यह तो जीवजंतु को मारते हैं, भैंसे मारते हैं, भैंसें मारते हैं, वे तो समझो कि द्रव्यहिंसा है। वह तो कुदरत के लिखे अनुसार ही चला करता है। इसमें किसी का चले ऐसा नहीं।

इसलिए भगवान ने तो क्या कहा था कि पहले, खुद को कषाय नहीं हो ऐसा करना। क्योंकि ये कषाय, वे सबसे बड़ी हिंसा हैं। वह आत्महिंसा कहलाती है, भावहिंसा कहलाती है। द्रव्यहिंसा हो जाए तो भले हो, परन्तु भावहिंसा नहीं होने देना। तब ये लोग द्रव्यहिंसा रोकते हैं, पर भावहिंसा चालू रहती है।

इसलिए किसी ने निश्चित किया हो कि 'मुझे नहीं ही मारने', तो उसके भाग्य में कोई मरने नहीं आता। अब वैसे तो वापिस उसने स्थूलहिंसा बंद की कि मुझे किसी जीव को मारना नहीं है। पर बुद्धि से मारना ऐसा निश्चित किया हो तब तो वापिस उसका बाज़ार खुल्ला

होता है। तब वहाँ आकर 'कीट-पतंगे' टकराते रहते हैं और वह भी हिंसा ही है न!

इसलिए किसी जीव को त्रास नहीं हो, किसी जीव को किंचित् मात्र दुख नहीं हो, किसी जीव की ज़रा-सी भी हिंसा हो, वैसा नहीं होना चाहिए। और किसी मनुष्य के लिए एक ज़रा-सा भी खराब अभिप्राय नहीं होना चाहिए। दुश्मन के लिए भी अभिप्राय बदला, तो वह सबसे बड़ी हिंसा है। एक बकरा मारो उसके सामने तो यह बड़ी हिंसा है। घर के लोगों के साथ चिढ़ना, वह बकरा मारो उससे भी बड़ी हिंसा है। क्योंकि चिढ़ना वह आत्मघात है। और बकरे का मरना वह अलग चीज़ है।

और लोगों की निंदा करनी, वह मारने के बराबर है। इसलिए निंदा में तो पड़ना ही मत। बिलकुल भी लोगों की निंदा कभी करनी नहीं। वह हिंसा ही है।

फिर जहाँ पक्षपात है वहाँ हिंसा है। पक्षपात यानी कि हम अलग और आप अलग, वहाँ हिंसा है। ऐसे अहिंसा का तमग़ा लगाता है कि हम अहिंसक प्रजा हैं। हम अहिंसा में ही माननेवाले हैं, पर भाई, पहली हिंसा, वह पक्षपात है। यदि इतना शब्द समझे तो भी बहुत हो गया। इसलिए वीतरागों की बात समझने की ज़रूरत है।

निज का भावमरण प्रतिक्षण

सारे जगत् के लोगों को रौद्रध्यान और आर्तध्यान तो अपने आप होता ही रहता है। उसके लिए तो कुछ करना ही नहीं है। इसलिए इस जगत् में सबसे बड़ी हिंसा कौन-सी? आर्तध्यान और रौद्रध्यान! क्योंकि वह आत्महिंसा कहलाती है। वो जीवों की हिंसा तो पुद्गल हिंसा कहलाती है और यह आत्महिंसा कहलाती है। तो कौन-सी हिंसा अच्छी?

प्रश्नकर्ता : हिंसा तो कोई भी अच्छी नहीं है। परन्तु आत्महिंसा वह बड़ी कहलाती है।

दादाश्री : फिर ये लोग सारे पुद्‌गलहिंसा तो बहुत पालते हैं। पर आत्महिंसा तो हुआ ही करती है। आत्महिंसा को शास्त्रकारों ने भावहिंसा लिखा है। अब भावहिंसा इस ज्ञान के बाद आपको बंद हो जाती है। तो अंदर कैसी शांति रहती है न!

प्रश्नकर्ता : कृपालुदेव ने इस भावहिंसा को भावमरण कहा है न? कृपालुदेव का वाक्य है न, *'क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रह्यो'* उसमें समय-समय का भावमरण होता है?

दादाश्री : हाँ प्रत्येक क्षण भयंकर भावमरण यानी क्या कहना चाहते हैं? जब कि प्रतिक्षण भावमरण नहीं होता, हर एक समय भयंकर भावमरण होता है। पर यह तो स्थूल रूप से पर लिखा हुआ है। जब कि प्रत्येक समय भावमरण ही हो रहा है। भावमरण मतलब क्या कि 'मैं चंदूलाल हूँ' वही भावमरण है। जो अवस्था उत्पन्न हुई वह अवस्था 'मुझे' हुई ऐसा मानना मतलब भावमरण हुआ। इन सब लोगों की रमणता भावमरण में है कि 'यह सामायिक मैंने किया, यह मैंने किया।'

प्रश्नकर्ता : तो फिर भाव सजीव किस प्रकार से हो सकते हैं?

दादाश्री : ऐसे भाव सजीव नहीं हैं। भाव का मरण हो गया है। भावमरण वह निद्रा कहलाता है। भावनिद्रा और भावमरण वे दोनों एक ही हैं। इस 'अक्रम विज्ञान' में भाव वस्तु ही नहीं रखते, इसलिए फिर भावमरण होता नहीं, और क्रमिक में तो प्रतिक्षण भावमरण में ही बंधे होते हैं। कृपालुदेव तो ज्ञानी पुरुष न, इसलिए उन्हें अकेले को ही समझ में आता था, उन्हें ऐसा लगता कि, 'यह तो भावमरण हुआ, यह भावमरण हुआ।' इसलिए खुद निरंतर सचेत रहते थे। दूसरे लोग तो भावमरण में ही चला करते हैं।

भावमरण का अर्थ क्या? कि स्वभाव का मरण हुआ और विभाव का जन्म हुआ। अवस्था में 'मैं', उससे विभाव का जन्म हुआ और 'हम' अवस्था को देखें तब स्वभाव का जन्म हुआ।

इसलिए यह पुद्गलहिंसा होगी न, तो उसका कोई निबेड़ा आएगा। परन्तु आत्महिंसावाले का निबेड़ा नहीं आएगा। इतनी बारीकी से लोग समझाते ही नहीं न! वे तो मोटा कात देते हैं।

अहिंसा से बढ़ी बुद्धि

ऐसा है, आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो मुसलमानों को होता है, क्रिश्चियनों को होता है, सभी को होता है, और अपने लोगों को भी होता है। उसमें फर्क क्या है? डिफरेन्स क्या? उल्टा अपने लोगों को अधिक होता है। क्योंकि जीवहिंसा में ज़रा मर्यादा रखी है। अहिंसाधर्म पालते हैं, उसके कारण अधिक होता है। क्योंकि उसका दिमाग़ बहुत तेज़ होता है, बुद्धिशाली होता है। और जैसे बुद्धि बढ़ती है, वैसे दूषमकाल में भयंकर पाप बंधते हैं। और अधिक बुद्धिशाली कम बुद्धिवाले को मारता भी है।

फ़ॉरेनवाले और मुस्लिम कोई बुद्धि से मारता नहीं है। अपने हिन्दुस्तान के लोग तो बुद्धि से मारते हैं। बुद्धि से मारना तो किसी काल में होता ही नहीं था। इस काल में ही नयी बला खड़ी हुई है यह। परन्तु बुद्धि हो तब मारे न?! तब बुद्धि किसे होती हैं? एक तो इन जीवों का जो घात नहीं करते हों, अहिंसाधर्म पालते हों, छहों काया के जीवों की हिंसा नहीं करते हों, उनकी बुद्धि बढ़ती है। फिर कोई कंदमूल नहीं खाता हो उसकी बुद्धि बढ़ती है। तीर्थंकर की मूर्ति के दर्शन करे, उनकी बुद्धि बढ़ती है। और यह बुद्धि बढ़ी, उसका लाभ क्या हुआ?

प्रश्नकर्ता : इन लोगों के प्रति आप अन्याय करते हो।

दादाश्री : अन्याय नहीं करता। बहुत बुद्धिशाली हैं इसलिए उन्हें नुकसान होगा, ऐसा मैंने पुस्तक में लिखा है। जैसा है वैसा न कहें तो ज्यादा उल्टे रास्ते पर चलेंगे। बुद्धि से मारना, वह भयंकर गुनाह है। तो बुद्धि बढ़ी उसका ऐसा दुरुपयोग करना है? और जागृति कम हो, वह बेचारा मंदकषायी होता है।

अहिंसा का धर्म पालता है, जन्मजात ही छोटे जीवों को नहीं मारना ऐसा उसकी बिलीफ़ में है, उसके दर्शन में है वह अधिक तीक्ष्ण बुद्धिवाला होता है।

प्रश्नकर्ता : जन्म से ही अहिंसा पालता है इसलिए उतने अधिक मृदु कहलाते हैं न?

दादाश्री : मृदु नहीं कहलाते। अहिंसा पालने का फल आया। उसका फल बुद्धि बढ़ी और बुद्धि से लोगों को मारते रहे, बुद्धि से गोलियाँ मारी। ऐसे ही खून कर डाले, तो एक जन्मों का मरण हुआ, परन्तु यह तो बुद्धि से गोली मारने में अनंत जन्म का मरण होगा।

बड़ी हिंसा, लड़ाई की या कषाय की?

पहले के जमाने में गाँव के सेठ होते थे, वे अधिक बुद्धिवाले होते थे न! गाँव में दो लोगों में झगड़ा हो तो सेठ उसका लाभ लेते नहीं थे। और दोनों को अपने घर बुलाते और दोनों के झगड़े का निकाल कर देते। और वापिस अपने घर भोजन भी करवाते। किस प्रकार निकाल करते थे? कि दोनों में से एक व्यक्ति कहे कि 'साहब मेरे पास दो सौ रुपये हैं नहीं तो अभी किस तरह से दूँ?' तब सेठ क्या कहते कि 'तेरे पास कितने हैं?' तब वह कहे, 'पचासेक हैं।' तो सेठ क्या कहते कि 'तो डेढ़ सौ ले जाना।' और झगड़े का हल कर देते। और अभी तो हाथ में आई हुई चिड़िया भी खा जाते हैं!

यह मैं किसी को आक्षेप नहीं दे रहा हूँ। मैं सारे जगत् को निरंतर निर्दोष ही देखता हूँ। ये सभी व्यवहारिक बातें चल रही हैं। मुझे गाली दे, मारे, धौल मारे, चाहे जो करे, पर मैं पूरे जगत् को निर्दोष ही देखता हूँ। यह तो व्यवहार का कह रहा हूँ। व्यवहार में यदि न समझें, तो उसका निबेड़ा कब आएगा? और ज्ञानी पुरुष के पास से समझे बगैर का काम नहीं लगता। बाकी, मुझे किसी के साथ परेशानी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इतना छोटा बच्चा भी अपने यहाँ अहिंसा पाल रहा होता है, वह उसके पूर्व के संस्कार हैं न?

दादाश्री : हाँ, इसलिए ही तो न! संस्कार के बगैर तो ऐसा मिले ही नहीं न! पूर्वजन्म के संस्कार और पुण्य के आधार पर वह मिला, परन्तु अब दुरुपयोग करने से कहाँ जाएगा वह क्या जानते हो?! अब कहाँ जाना है, उसका सर्टीफिकेट है किसी प्रकार का?

प्रश्नकर्ता : वह तो अहिंसा ही पालता है। उसका दुरुपयोग कहाँ करता है?

दादाश्री : इसे अहिंसा कहें ही कैसे? मनुष्य के साथ कषाय करना, उसके जैसी बड़े से बड़ी हिंसा इस जगत् में कोई नहीं है। ऐसा एक ढूँढकर लाओ कि जो नहीं करता हो। घर में कषाय न करे, हिंसा न करे ऐसा। सारे दिन कषाय करने और फिर हम अहिंसक हैं ऐसा कहलवाना वह भयंकर गुनाह है। इससे तो फ़ॉरेनवालों को इतने कषाय नहीं होते। कषाय तो जागृति अधिक हो वही करता है न! आपको ऐसा समझ में आता है कि अधिक जागृतिवाला करता है या कम जागृतिवाला करता है? आपको नहीं लगता कि कषाय वह भयंकर गुनाह है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : हाँ, यह तो उसके जैसी हिंसा कोई नहीं। कषाय वही हिंसा है और यह अहिंसा वह तो जन्मजात अहिंसा है, पूर्व में भावना की थी खाली और आज उदय में आई। इसलिए क्रोध-मान-माया-लोभ, वह हिंसा रुके, तब हिंसा रुक जाती है।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है। वह समझ में आया। शास्त्र में भी ऐसा कहा है। चक्रवर्ती राजा इतनी सारी लड़ाईयाँ लड़ते हैं, हिंसा करते हैं, फिर भी उन्हें अनंतानुबंधी कषाय लगते नहीं। परन्तु कुगुरु, कुधर्म और कुसाधु में मानते हैं, उन लोगों को ही अनंतानुबंधी कषाय बंधते हैं।

दादाश्री : बस, उसके जैसा अनंतानुबंधी दूसरा नहीं! यह तो खुला कहा है न!

बुद्धि से मारे वह हार्ड रौद्रध्यान

प्रश्नकर्ता : पर इसमें सारे कर्म के भेद हैं या नहीं?

दादाश्री : पर यह समझ में नहीं आता? यह छोटे बच्चे को समझ में आए ऐसा है। हम फ़ानूस लेकर जा रहे हों, और किसी के हाथ में दीया हो, उस बेचारे को अँधेरे में नहीं दिखता हो, तो हम कहेंगे न कि रुको चाचा, मैं आता हूँ, फ़ानूस दिखाता हूँ। फ़ानूस दिखाते हैं या नहीं दिखाते? तब बुद्धि वह लाइट है। वह जिसे कम बुद्धि होती है उसे हम कहें कि 'भाई, ऐसे नहीं, नहीं तो धोखा खा जाओगे, और आप इस तरह लेना।' पर यह तो तुरन्त शिकार ही कर डालता है। हाथ में आना चाहिए कि तुरन्त शिकार! इसलिए मैंने भारी शब्द लिखे हैं कि हार्ड रौद्रध्यान! चौथे आरे तक कभी भी हुआ नहीं ऐसा इस पाँचवे आरे में हुआ है। बुद्धि का दुरुपयोग करने लगे हैं।

और ये व्यापारी जो हैं, वे अधिक बुद्धिवाले कम बुद्धिवाले को मारा ही करते हैं। अधिक बुद्धिवाला तो, कम बुद्धिवाला ग्राहक आए न तो उसके पास से लूट लेता है। कम बुद्धिवाले के पास से कुछ भी लूट लेना, भगवान ने उसे रौद्रध्यान कहा है, और उसका फल जबरदस्त नर्क कहा है। ऐसे बुद्धि का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

बुद्धि तो लाइट है। वो लाइट मतलब अँधेरे में जा रहे हों, उन्हें लाइट दिखाने के भी पैसे माँगते हो आप? अंधेरे में किसी व्यक्ति के पास फ़ानूस छोटा-सा हो, तो हमें लाइट नहीं दिखानी चाहिए उस बेचारे को? बुद्धि से लोगों ने दुरुपयोग किया, वह हार्ड रौद्रध्यान, नर्क में जाने से भी छूटा नहीं जाएगा। हार्ड रौद्रध्यान किसी काल में हुआ नहीं, वैसा इस पाँचवे आरे में चला है। बुद्धि से मारते हैं क्या? आप जानते हो?

ऐसे बुद्धि से मारते हैं न, वह भयंकर गुनाह है। देखो, यह अभी भी छोड़ देंगे न और अभी तक का पछतावा लें और अब नये सिरे से नहीं करे, तो अभी भी अच्छा है। नहीं तो इसका कोई ठिकाना नहीं। वह गैरजिम्मेदारी है।

इतना करो, और अहिंसक बनो

हमें मन में हिंसकभाव नहीं रखना है। 'मुझे किसी की हिंसा करनी नहीं' ऐसा भाव ही मज़बूत रखना और सुबह पहले बोलना चाहिए कि, 'मन-वचन-काया से किसी जीव को किंचित् मात्र दुख न हो।' ऐसा भाव बोलकर और फिर संसारी क्रिया शुरू करना, ताकि जिम्मेदारी कम हो जाए। फिर अपने पैर से कोई जीव कुचला गया, तब भी आप जिम्मेदार नहीं हैं। क्योंकि आज आपका भाव नहीं है वैसा। आपकी क्रिया भगवान देखते नहीं हैं, आपके भाव देखते हैं। कुदरत के बहीखाते में तो आपका भाव देखते हैं और यहाँ कि सरकार, यहाँ के लोगों के बहीखाते में आपकी क्रिया देखती है। लोगों का बहीखाता तो यहीं का यहीं पड़ा रहनेवाला है। कुदरत का खाता वहाँ काम लगेगा। इसलिए आपका भाव कहाँ है, उसकी जाँच करो।

इसलिए सुबह पहले ऐसा पाँच बार बोलकर निकला वह अहिंसक ही है। चाहे जहाँ फिर रक-झक कर आया हो, तब भी वह अहिंसक है। क्योंकि घर से निकला तब निश्चय करके निकला था और फिर घर जाकर वापिस ताला लगा देना। घर जाकर ऐसा कहना कि आज सारे दिन में निश्चय करके निकला, फिर भी जो कोई किसी को दुख हुआ हो, उसकी क्षमायाचना कर लेता हूँ। बस हो गया। फिर आपकी जोखिमदारी ही नहीं न!

किसी जीव की हिंसा करनी नहीं, करवानी नहीं या कर्त्ता के प्रति अनुमोदना नहीं करनी और मेरे मन-वचन-काया से किसी जीव को दुख न हो, ऐसी भावना रही कि आप अहिंसक हो गए! वह अहिंसा महाव्रत पूरा हो गया कहलाता है। मन में भावना निश्चित करी, निश्चित यानी डिसीज़न। यानी हम जो निश्चिच करते हैं और उसे कम्पलीट सिन्सियर रहें, उसी बात पर ही कायम रहें, तो महाव्रत कहलाता है और निश्चिच किया परन्तु कायम न रहें तो अणुव्रत कहलाता है।

सावधान हो जाओ, है विषय में हिंसा

भगवान यदि कभी विषय की हिंसा का वर्णन करे तो मनुष्य

मर जाए। लोग समझते हैं कि इसमें क्या हिंसा है? हम किसी को डाँटते नहीं है। परन्तु भगवान की दृष्टि से देखें तो हिंसा और आसक्ति दोनों इकट्ठे होते हैं, इसलिए पाँचों महाव्रत टूटते हैं और उससे बहुत दोष लगता है। एक ही बार के विषय से लाखों जीव मर जाते हैं, उसका दोष लगता है। इसलिए इच्छा न हो फिर भी उसमें भयंकर हिंसा है। इसलिए रौद्र स्वरूप हो जाता है।

एक विषय के कारण तो सारा संसार खड़ा रहा है। यह स्त्री विषय न हो न, तो दूसरे सब विषय तो कभी बाधक ही नहीं होते। अकेले इस विषय का अभाव हो जाए, तब भी देवगति हो। इस विषय का अभाव हुआ कि दूसरे सब विषय, सभी काबू में आ जाते हैं। और इस विषय में पड़ा कि विषय से पहले जानवरगति में जाता है। विषय से बस अधोगति ही है। क्योंकि एक विषय में तो कई करोड़ों जीव मर जाते हैं। समझ न हो फिर भी जोखिम मोल लेते हैं न!

इसलिए जब तक संसारीपन है, स्त्री विषय है, तब तक वह अहिंसा का घातक ही है। उसमें भी परस्त्री, वह तो सबसे बड़ा जोखिम है। परस्त्री हो तो नर्क का अधिकारी ही हो गया। बस, दूसरा कुछ भी उसे ढूँढना नहीं और मनुष्यपन फिर आएगा ऐसी आशा रखनी ही नहीं। यही सबसे बड़ा जोखिम है। परपुरुष और परस्त्री नर्क में ले जानेवाले हैं।

और खुद के घर पर भी नियम तो होना चाहिए न? यह तो ऐसा है न खुद के हक़ की स्त्री के साथ का विषय अनुचित नहीं है, फिर भी साथ-साथ इतना समझना पड़ेगा कि इसमें बहुत सारे जर्म्स (जीव) मर जाते हैं। इसलिए अकारण तो ऐसा नहीं ही होना चाहिए न? कारण हो तो बात अलग है। वीर्य में जर्म्स ही होते हैं और वे मानवबीज के होते हैं, इसलिए हो सके तब तक इसमें ध्यान रखना। यह हम आपको संक्षेप में कह रहे हैं। बाकी, इसका पार आए नहीं न!

मन से पर अहिंसा

दूसरी झूठी अहिंसा मानें, उसका अर्थ क्या है फिर? अहिंसा

मतलब किसी के लिए खराब विचार भी न आए। वह अहिंसा कहलाता है। दुश्मन के लिए भी खराब विचार न आए। दुश्मन के लिए भी कैसे उसका कल्याण हो, ऐसा विचार आए। खराब विचार आना प्रकृतिगुण है, पर उसे पलटना अपना पुरुषार्थ है। आप समझ गए या नहीं समझे यह पुरुषार्थ की बात?

अहिंसक भाववाला तीर मारे तो ज़रा भी खून न निकले और हिंसक भाववाला फूल डाले तब भी दूसरे को खून निकलता है। तीर और फूल इतने इफेक्टिव नहीं हैं, जितनी इफेक्टिव भावना है। इसलिए हमारे एक-एक शब्द में 'किसी को दुख न हो, किसी भी जीव मात्र को दुख न हो' ऐसा हमें निरंतर भाव रहा करता है। जगत् के जीव मात्र को इस मन-वचन-काया से किंचित् मात्र भी दुख न हो, उस भावना से ही 'हमारी' वाणी निकल रही होती है। वस्तु काम नहीं करती, तीर काम नहीं करता, फूल काम नहीं करते, पर भाव काम करते हैं।

यह 'अक्रम विज्ञान' तो क्या कहता है? मन से भी हथियार नहीं उठाना है, तो फिर लकड़ी किस तरह उठाई जाए? इस दुनिया में कोई भी जीव, छोटे से छोटे जीव के लिए मैंने मन से हथियार उठाया नहीं कभी भी, तो फिर दूसरा तो उठाऊँ किस तरह? वाणी ज़रा सख्त निकल जाती है कभी, सालभर में एकाध दिन थोड़ी कड़क वाणी निकल जाती है। यह जैसे खादी और रेशम में फर्क होता है न, खादी कैसी होती है? वैसी थोड़ी सख्त वाणी निकल जाती है कभी। वह भी पूरे साल में एकाध दिन ही। बाकी वाणी से भी अटेक नहीं किया। मन से उठाया नहीं कभी भी!

छोटे से छोटा जीव होगा, पर मन से हथियार उठाया नहीं। इस वर्ल्ड में कोई भी जीव, एक छोटा जीव हो, एक बिच्छू अभी काटकर गया हो, तब भी उस पर हथियार हमने उठाया नहीं! वह तो उसका फ़र्ज़ निभा कर जाता है। वह फ़र्ज़ नहीं निभाए तो हमारा छुटकारा नहीं हो। इसलिए किसी भी जीव के साथ मन बिगाड़ा नहीं कभी भी, उसका विश्वास है! अत: मानसिक हिंसा कभी भी नहीं की। नहीं तो मन का स्वभाव है, कुछ दिए बगैर रहता नहीं।

प्रश्नकर्ता : आप तो समझ गए होंगे कि इस हथियार का काम ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, हथियार काम का ही नहीं। इस हथियार की ज़रूरत है, ऐसा विचार ही नहीं आया। हमने तलवार जब से जमीन पर रखी तब से उठाई नहीं। सामनेवाला शस्त्रधारी हो, तब भी हम शस्त्र धारण नहीं करते। और अंत में वही रास्ता लेना पड़ेगा। जिसे इस जगत् में से भाग छूटना है, अनुकूल आता नहीं, उसे अंत में यही रास्ता लेना पड़ेगा, दूसरा रास्ता नहीं है।

इसलिए एक अहिंसा सिद्ध कर ले, तो बहुत हो गया। संपूर्ण अहिंसा सिद्ध करे, तो वहाँ बाघ और बकरी दोनों एक साथ पानी पीएँ!

प्रश्नकर्ता : वह तो तीर्थंकरों में उस तरह का होता था न?

दादाश्री : हाँ। और उन तीर्थंकरों की बात कहाँ हो! कहाँ वे पुरुष! आज वर्ल्ड तीर्थंकरों के एक वा्क्य को यदि समझा होता, एक ही वाक्य, तो सारा वर्ल्ड पूजा करता। परन्तु वह वाक्य उनकी समझ में पहुँचता ही नहीं न! और कोई पहुँचानेवाला भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप हो न?

दादाश्री : मेरे अकेले की पुँगी कहाँ बजे?

ज्ञानी पुरुष की अहिंसा का प्रताप

ज्ञानी पुरुष का व्यवहार तो कैसा होता है? इतना अधिक अहिंसक होता है कि बड़े-बड़े बाघ भी शरमा जाएँ। बड़े-बड़े बाघ बैठे हों, तब भी ठंडे पड़ जाए, उसे सर्दी लग जाए, वास्तव में सर्दी लग जाए न! क्योंकि वह अहिंसा का प्रताप है। हिंसा का प्रताप तो जगत् ने देखा है न! ये हिटलर, चर्चिल सभी के प्रताप देखे हैं न? अंत में क्या हुआ? विनाश को न्योता दिया। हिंसा, वह विनाशी तत्त्व है। और अहिंसा, वह अविनाशी तत्त्व है।

अहिंसा, वहाँ हिंसा नहीं

प्रश्नकर्ता : अहिंसा हो, वहाँ हिंसा होती है?

दादाश्री : अहिंसा संपूर्ण हो वहाँ हिंसा नहीं होती। वह फिर आंशिक अहिंसा कहलाती है। परन्तु जो संपूर्ण अहिंसा होती है, उसमें हिंसा होती नहीं। पपीता की जितनी-जितनी स्लाइसेस करें, वे सब पपीता जैसी ही होती हैं, उसमें एक भी कड़वी नहीं निकलती। इसलिए स्लाइस एक ही प्रकार की होती है, मतलब अहिंसा में हिंसा नहीं होती। और संपूर्ण हिंसा हो उसमें अहिंसा भी नहीं होती। परन्तु आंशिक हिंसा, आंशिक अहिंसा, वह अलग चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : आंशिक अहिंसा, वह दया कहलाती है न?

दादाश्री : हाँ, वह दया कहलाती है। वह दया कहलाती है। दया धर्म का मूल ही है और दया की पूर्णाहुति, वहाँ धर्म की पूर्णाहुति होती है।

हिंसा-अहिंसा से पर

प्रश्नकर्ता : दया हो वहाँ निर्दयता होती ही है। ऐसा हिंसा और अहिंसा के बारे में भी है?

दादाश्री : हाँ है न! अहिंसा है तो हिंसा है। हिंसा है तो अहिंसा खड़ी रही है। अंत में भी क्या करना है? हिंसा में से बाहर निकलकर अहिंसा में आना है और अहिंसा से भी बाहर निकलना है। इस द्वंद्व से पर जाना है। अहिंसा, वह भी छोड़ देनी है।

प्रश्नकर्ता : अहिंसा से पर, वह कौनसी स्थिति?

दादाश्री : वही, अभी 'हम' हिंसा-अहिंसा से पर ही हैं। अहिंसा अहंकार के आधीन है और अहंकार से पर ऐसी यह 'हमारी' स्थिति! हिंसा-अहिंसा मैं पालता हूँ उसका पालनेवाला अहंकार होता है। इसलिए हिंसा और अहिंसा से पर यानी द्वंद्वो से पर हो तब ही वह

ज्ञानी कहलाते हैं। तमाम प्रकार के द्वंद्वो से पर। इसलिए अपने साधु-महाराज, वे बहुत दयालु होते हैं। परन्तु निर्दयता भी अंदर भरी हुई होती है। दया है, इसलिए निर्दयता है। एक कोने में भले खूब दया है। अस्सी प्रतिशत दया है तो बीस प्रतिशत निर्दयता है। इठ्यासी प्रतिशत दया है तो बारह प्रतिशत निर्दयता। छियानवे प्रतिशत दया है तो चार प्रतिशत निर्दयता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा हिंसा में भी होता है। छियानवे प्रतिशत अहिंसा हो तो चार प्रतिशत हिंसा है, ऐसा।

दादाश्री : कुल जोड़ ही दिखता है न! इटसेल्फ ही बोलता है न! कि अहिंसा छियानवे है इसलिए रहा क्या फिर? चार हिंसा रही।

प्रश्नकर्ता : तो वह हिंसा किस प्रकार की होती है?

दादाश्री : वह अंतिम प्रकार की। खुद जानता है और निकाल कर देता है। झटपट वह निकाल करके छूट जाता है।

ज्ञानी, हिंसा के सागर में संपूर्ण अहिंसक

अरे, हमें ही लोग पूछते हैं कि आप ज्ञानी होकर और मोटरों में घूमते हैं, तो मोटर के नीचे कितनी ही जीवहिंसा होती होगी, उसकी जिम्मेदारी किसकी? अब ज्ञानी पुरुष यदि संपूर्ण अहिंसक नहीं हों, तो ज्ञानी कहलाए ही कैसे? संपूर्ण अहिंसक मतलब हिंसा के सागर में भी संपूर्ण अहिंसक। वे ज्ञानी!! उन्हें किंचित् मात्र भी हिंसा नहीं लगती। फिर हमें वे लोग कहते हैं कि, 'आपकी पुस्तक हमने पढ़ी, बहुत आनंद देनेवाली है और अविरोधाभासी लगती है, पर आपका वर्तन विरोधाभासवाला लगता है।' मैंने कहा, 'कौन-सा वर्तन विरोधाभासवाला लगता है?' तब कहते हैं, 'आप गाड़ी में घूमते हैं वह।' मैंने कहा, 'आपको समझाऊँ, भगवान ने शास्त्र में क्या कहा है, वह पहले समझाता हूँ, फिर आप न्याय करना।' तब कहते हैं, 'क्या कहा है शास्त्र में?' मैंने कहा, 'आत्मस्वरूप, ऐसे ज्ञानी पुरुष

की जिम्मेदारी कितनी है?! ज्ञानी पुरुष को देह का मालिकीपना नहीं होता। देह का मालिकीपना उन्होंने फाड़ दिया है। यानी कि इस पुद्‌गल का मालिकीपन उन्होंने फाड़ दिया है इसलिए खुद इसके मालिक नहीं है। और मालिकीपना नहीं होने से उन्हें दोष लगता नहीं है। दूसरा, ज्ञानी पुरुष को त्याग संभवे नहीं।' तब कहते हैं, 'वह मालिकीपन का मुझे समझ में नहीं आया।' तब मैंने कहा, 'आपको ऐसा किसलिए लगता है कि मुझसे हिंसा हो जाएगी?' तब कहे, 'मेरे पैर के नीचे जीव आ जाए तो मुझसे हिंसा हुई कहलाए न?' इसलिए मैंने कहा, 'यह पैर आपका है, इसलिए हिंसा होती है। जब कि यह पैर मेरा नहीं है। इस देह को आज आपको जो करना हो वह कर सकते हो। इस देह का मैं मालिक नहीं।' फिर कहते हैं, 'यह मालिकीपना, और न-मालिकीपना किसे कहना चाहिए, वह हमें बताइए।' तब मैंने कहा, 'मैं आपको उदाहरण देकर समझाता हूँ।'

''एक गाँव में एक एरिया बहुत अच्छा है, आसपास की दुकानों के बीच में पाँचेक हज़ार फुट का ऐसा क़ीमती एरिया। उसके लिए किसी ने अरज़ी की सरकार को कि इस जगह में एक्साइज़ का माल दबा हुआ है। तब फिर पुलिस डिपार्टमेन्ट वहाँ गया, बरसात बीत गई थी इसीलिए उस जगह पर अच्छी हरी झाड़ी और पौधे उग गए थे। वह जगह पहले खोद डाली। फिर दो-तीन फुट गहरा खोदा, तब फिर अंदर से वह एक्साइज़ का माल सारा निकला। तब फौज़दार ने आसपासवालों को पूछवाया कि इसका ओनर कौन है? तब लोगों ने कहा कि यह तो लक्ष्मीचंद सेठ का है। फिर फौज़दार ने पूछा कि वे कहाँ रहते हैं? तब पता चला कि उस जगह पर रहते है। इसलिए पुलिसवाले को भेजा कि लक्ष्मीचंद सेठ को पकड़कर लाओ। पुलिसवाले लक्ष्मीचंद सेठ के पास गए। तब लक्ष्मीचंद सेठ ने कहा कि भाई, यह जगह मेरी है, ऐसा आप कहते हो वह ठीक है, पर मैंने तो पंद्रह दिन पहले ही बेच दी है। आज मैं इस जमीन का मालिक नहीं हूँ। तब उन्होंने पूछा कि किसे बेची है वह कहो। आप उसका सबूत दिखाओ। फिर सेठ ने सबूत की नकल दिखाई। उस नकल को देखकर

उन लोगों ने जिसने यह जगह खरीदी थी उसके पास गए। उन्हें कहते हैं कि भाई यह जगह आपने खरीदी है? तब उसने कहा कि हाँ, मैंने ली है। पुलिसवाले ने कहा कि आपकी ज़मीन में से ऐसा निकला है। तब वह कहता है, पर मैंने तो यह जमीन पंद्रह दिन पहले ही ली है। और यह माल तो बरसात से पहले का दबाया हुआ लगता है, उसमें मेरा क्या गुनाह? तब पुलिसवाला कहता है कि वह हमें देखना नहीं है। 'हू इज़ द ओनर नाउ? आज कौन मालिक है?' आज मालिकीपन नहीं तो जोखिमदारी नहीं। मालिक हो तो जोखिम है।''

तब वे लोग समझ गए। यदि पंद्रह दिन पहले ही लिया तब भी जोखिमदार हुआ न? बाकी, ऐसे बुद्धि से देखने जाएँ तो वह बरसात से पहले से दबा हुआ है।

अब इतनी अधिक बारीकी से समझें तो निबेड़ा आए। नहीं तो निबेड़ा ही आए कैसे? यह तो पज़ल है। द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इसटेल्फ। यह पज़ल सोल्व किस तरह की जा सकती है? देयर आर टू व्यू पोइन्ट्स टु सोल्व दिस पज़ल। वन रिलेटिव व्यू पोइन्ट, वन रियल व्यू पोइन्ट। इस जगत् में यदि पज़ल सोल्व नहीं करे तो वह पज़ल में ही डिसोल्व हो चुका है। पूरा जगत्, सभी इस पज़ल में डिसोल्व हो चुके हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसे अर्थ करके फिर सब लोग मज़े ही करेंगे न, कि मैं मालिक नहीं, ऐसा? और फिर सब इस तरह कहकर दुरुपयोग करेंगे न?

दादाश्री : मालिक नहीं ऐसा कोई बोलता-करता नहीं। नहीं तो अभी धौल मारे न, तो मालिक हो जाता है! गाली दें तब भी मालिक हो जाता है, तुरन्त ही सामना करता है। इसलिए हमें समझना कि मालिक हैं ये। मालिक हैं या मालिक नहीं उसका प्रमाण तुरन्त ही मिलता है न! उसका टाइटल दिख ही जाता है कि यह मालिक है या नहीं? गाली दे कि तुरन्त ही टाइटल दिखाते हैं या नहीं दिखाते? यानी देर ही नहीं लगती। बाकी ऐसे मुँह से बोलें तो क्या दिन फिरते हैं?

प्रश्नकर्ता : पर ये गाड़ियों में घूमते हैं उसमें पाप नहीं है?

दादाश्री : यह पाप तो, निरा ये जगत् ही पापमय है। जब इस देह का मालिक नहीं होगा, तब ही निष्पापी होगा। नहीं तो इस देह का मालिक है, तब तक सब पाप ही है।

हम श्वास लेते हैं तब कितने ही जीव मर जाते हैं, और श्वास छोड़ने के साथ ही कितने ही जीव मर जाते हैं। यों ही हम चलते हैं न, तब भी कितने जीवों को हमसे धक्का लगता रहता है और जीव मरते रहते हैं। हमने ऐसे हाथ किया तब भी जीव मर जाते हैं। यों वे जीव दिखते नहीं, तब भी जीव मरते रहते हैं।

इसलिए वह सब पाप ही है। पर यह देह, वह मैं नहीं, ऐसा जब भान होगा, देह का मालिकीपन नहीं होगा, तब खुद निष्पाप होगा। मैं इस देह का छब्बीस वर्ष से मालिक नहीं। इस मन का मालिक नहीं, वाणी का मालिक नहीं, मालिकीभाव के दस्तावेज ही फाड़ दिए हैं, इसलिए उसकी जिम्मेदारी ही नहीं न! इसलिए जहाँ मालिकीभाव है, वहाँ गुनाह लागू होता है। मालिकीभाव नहीं वहाँ गुनाह नहीं है। इसलिए हम तो संपूर्ण अहिंसक कहलाते हैं। क्योंकि आत्मा में ही रहते हैं। होम डिपार्टमेन्ट में ही रहते हैं और फ़ॉरेन में हाथ डालते ही नहीं। इसलिए पूरे हिंसा के सागर में संपूर्ण अहिंसक हैं।

प्रश्नकर्ता : यह 'ज्ञान' लेने के बाद अहिंसक हो जाते हैं?

दादाश्री : यह ज्ञान तो मैंने आपको दिया है कि यह आपको पुरुष बनाया है। अब हमारी आज्ञा पालने से हिंसा आपको छुएगी नहीं। आप पुरुषार्थ करो तो आपका। पुरुषार्थ करो तो पुरुषोत्तम हो जाओगे, नहीं तो पुरुष तो हो ही। इसलिए हमारी आज्ञा पालनी, वह पुरुषार्थ है। अहिंसक को हिंसा कैसे छुए?

प्रश्नकर्ता : नौ कलमें जो अनुभव में लाए, उसे हिंसा बाधक ही नहीं होती?

दादाश्री : हाँ, उसे भी हिंसा बाधक है। परन्तु नौ कलमें बोलें उससे तो अभी तक हो चुकी हिंसा होती है, वह धुल जाती है। पर यह जो पाँच आज्ञा पाले न उसे तो हिंसा छुए ही नहीं। हिंसा के सागर में घूमें, निरा सागर ही पूरा हिंसा का है। यह हाथ ऊँचा करें तो कितने ही जीव मर जाते हैं। केवल जीवों से ही भरा हुआ जगत् है। पर हमारी पाँच आज्ञा पालें उस घड़ी इस देह में खुद नहीं होता। और देह है वह स्थूल होने से दूसरे जीवों को दुखदायी बन पड़ता है। आत्मा सूक्ष्म होने से किसी को नुकसान करता नहीं। इसलिए हमने हमारी पुस्तक में साफ लिखा है कि हम हिंसा के सागर में संपूर्ण अहिंसक हैं। सागर है हिंसा का, उसमें हम संपूर्ण अहिंसक है। हमारा मन तो हिंसक है ही नहीं। परन्तु वाणी ज़रा हिंसक है थोड़ी जगह पर, वह टेपरिकॉर्डर है। हमें उसका मालिकीपन नहीं है। फिर भी टेपरिकॉर्डर हमारा, उसके जितना गुनाह हमें है। उसके प्रतिक्रमण हमारे होते हैं। भूल तो पहले हमारी ही थी न! हू इज़ द ओनर? तब हम कहें कि वी आर नोट द ओनर। तब कहें कि पहले के ओनर हैं। आपने बीच में बेची नहीं थी, बीच में बिक गई होती तो अलग बात थी।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी अहिंसक वाणी से हम सब महात्मा अहिंसक बन रहे हैं।

दादाश्री : हमारी आज्ञा पालो तो आप अहिंसक हो, ऐसा इतना अधिक सुंदर कहता हूँ, फिर! और वे मुश्किल हों तो मुझे कह दो, बदल देते हैं।

संपूर्ण अहिंसा, वहाँ प्रकटे केवलज्ञान

इसलिए, धर्म कौन सा ऊँचा कि जहाँ पर सूक्ष्म भेद से अहिंसा समझ में आई हुई हो। संपूर्ण अहिंसा, वह केवलज्ञान! इसलिए हिंसा बंद हो तो समझना कि यहाँ सच्चा धर्म है।

हिंसा बिना का जगत् है ही नहीं। जगत् ही पूरा हिंसामय है।

जब आप खुद ही अहिंसावाले हो जाओगे, तो जगत् अहिंसावाला होगा और अहिंसा के साम्राज्य के बिना कभी भी केवलज्ञान नहीं होता, जो जागृति है वह पूरी आएगी नहीं। हिंसा नाम मात्र की भी नहीं होनी चाहिए। हिंसा किसकी करता है? ये सब परमात्मा ही हैं, सभी जीव मात्र में परमात्मा ही हैं। किसकी हिंसा करोगे? किसे दुख दोगे?

चरम अहिंसा का विज्ञान

जब तक आपको लगता है कि 'मैं फूल तोड़ता हूँ, मुझे हिंसा लगती है', तब तक हिंसा आपको लगेगी और ऐसा नहीं समझते, उसे भी हिंसा लगती है। पर जानकर जो तोड़ते हैं फिर भी खुद स्वभाव में आ चुके हैं, उन्हें हिंसा लगती नहीं है।

क्योंकि ऐसा है न, भरत राजा को तेरह सौ रानियों के साथ, लड़ाई लड़ते हुए भी ज्ञान रहा था। तब वह अध्यात्म कैसा होगा? और इन लोगों को एक रानी हो, तब भी नहीं रहता। भरत राजा ने ऋषभदेव भगवान से कहा कि 'भगवान यह लड़ाईयाँ लड़ता हूँ और कितने ही जीवों की हिंसा होती है, और ये तो मनुष्यों की हिंसाएँ होती हैं, दूसरे छोटे जीवों की हिंसा हुई हो तो ठीक है पर यह तो मनुष्य हिंसा! और हम लड़ाईयाँ लड़ते हैं इसलिए होती है न!' तब भगवान ने कहा कि, 'यह सब तेरा हिसाब है और वह चुकाना है।' तब भरत राजा कहते हैं, 'परन्तु मुझे भी मोक्ष में जाना है, मुझे कोई इस तरह बैठे रहना नहीं है।' तब भगवान कहते हैं कि 'हम तुझे अक्रम विज्ञान देते हैं, वह तुझे मोक्ष में ले जाएगा। इसलिए स्त्रियों के साथ में रहने के बावजूद, लड़ाईयाँ लड़ने के बावजूद कुछ छुएगा नहीं। निर्लेप रह सके, असंग रह सकें ऐसा ज्ञान देते हैं।'

शंका, तब तक दोष

'इस' ज्ञान के बाद खुद शुद्धात्मा हो गया। अब दरअसल शुद्धात्मा समझ में आए तो किसी भी प्रकार की हिंसा या कुछ भी अशुभ करे, वह खुद के गुणधर्म में है ही नहीं। उसे शुद्धात्मा का लक्ष पूरापूरा है।

परन्तु जब तक अभी भी खुद को शंका होती है कि मुझे दोष बैठा होगा! जीव मुझसे कुचला गया और मुझे दोष बैठा है, ऐसी शंका पड़ती है, तब तक सुबह पहले खुद निश्चय करके निकलना, 'किसी जीव को मन-वचन-काया से किंचित् मात्र दुख न हो', ऐसा पाँच बार बोलकर निकलो, ऐसा 'हमें' 'चंदूभाई' से बुलवाना है। अतः हमें ऐसा ज़रा कहना है कि चंदूभाई, बोलो, सुबह पहले उठते ही, 'मन-वचन-काया से किसी भी जीव को किंचित् मात्र दुख न हो, वह हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा है' और ऐसा 'दादा भगवान' की साक्षी में बोलकर निकले कि फिर सारी जवाबदारी 'दादा भगवान' की।

और यदि शंका न पड़ती हो तो उसे कोई हर्ज नहीं। हमें शंका पड़ती नहीं और आपको शंका पड़ती है, वह स्वाभाविक है। क्योंकि आपको तो यह दिया हुआ ज्ञान है। एक मनुष्य ने लक्ष्मी खुद कमाई और इकट्ठी की हुई हो और एक मनुष्य को लक्ष्मी दी हुई हो, उन दोनों के व्यवहार में बहुत फर्क होता है।

असल में ज्ञानी पुरुष ने जो आत्मा जाना है न, वह आत्मा तो किसी को किंचित् मात्र भी दुख न दे, ऐसा है और कोई उसे किंचित् मात्र दुख न दे, ऐसा वह आत्मा है। असल में मूल आत्मा वैसा है।

वेदक-निर्वेदक-स्वसंवेदक

एक व्यक्ति मुझे पूछ रहा था। वह मुझे कहता है, 'ये मच्छर काटते हैं, वह किस तरह पुसाए?' तब मैंने कहा, 'ध्यान में बैठना। मच्छर काटे तो देखना।' तब वह कहता है, 'वह तो सहन नहीं होता।' तब मैंने कहा, 'ऐसा बोलना कि मैं निर्वेद हूँ। अब वेदक स्वभाव मेरा नहीं, मैं तो निर्वेद हूँ। इससे थोड़े अंशों में तू वापिस तेरे होम डिपार्टमेन्ट की तरफ आएगा। ऐसे करते-करते ऐसे सौ-दो सौ बार मच्छर तुझे काटेंगे, ऐसे करते-करते खुद निर्वेद हो जाएगा।' निर्वेद मतलब क्या? जाननेवाला सिर्फ, कि मच्छर ने यहाँ पर काटा। खुद ने वेदा नहीं, वह निर्वेद! वास्तव में खुद वेदता ही नहीं, परन्तु वेदता है वह पूर्व

अभ्यास है। पूर्व का अभ्यास है न, इसलिए वह बोलता है कि इसने मुझे काटा। इसलिए वास्तव में खुद निर्वेद ही है। परन्तु हमें इस सत्संग में बैठ-बैठकर वह पद समझ लेना है, वह पूरा पद समझ लेना है कि आत्मा वास्तव में ऐसा है। इसलिए अभी हमें शुद्धात्मापद से चला लेना है। इतना बोले तब भी उसे कर्म लगने बंद हो गए। उस आरोपित भाव से छूटा यानी कर्म बंधने रुक गए।

प्रश्नकर्ता : यह मच्छर ने काटा हो, तब भी 'मैं वेदक नहीं' कहना?

दादाश्री : हाँ, यह आप ऐसे बैठे हो और यहाँ हाथ पर मच्छर बैठा। इसलिए 'बैठा' वह आपको पहले अनुभव होता है। वह आपको जानपना होता है। यह मच्छर बैठा, उस घड़ी जानपना होता है या वेदकपना होता है? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : बैठा हो उस समय तो जानपन ही होता है।

दादाश्री : हाँ, फिर वह डंक मारता है, उस घड़ी भी जानपना है, परन्तु फिर 'मुझे मच्छर ने काटा, मुझे काटा' कहता है इसलिए वह वेदक बन जाता है। अब वास्तव में खुद निर्वेद है। इसलिए मच्छर डंक मारे उस घड़ी हमें कहना है कि मैं तो निर्वेद हूँ। फिर डंक गहरे जाए, तब हमें फिर कहना है, 'मैं निर्वेद हूँ।'

प्रश्नकर्ता : अब आपने निर्वेद की बात करी, परन्तु दूसरे एक शब्द का उपयोग किया है कि स्व-संवेदन होता है।

दादाश्री : स्वसंवेदन तो नहीं बोला जा सकता। वह तो बहुत ऊँची वस्तु है। स्वसंवेदन, वह तो अंतिम बात कहलाती है। अभी तो हमें 'मैं निर्वेद हूँ' बोलना है कि जिससे यह वेदना कम हो। मेरा क्या कहना है कि तब भी वेदना एकदम जाती नहीं। और स्वसंवेदन तो 'ज्ञान' ही हुआ कहलाता है। उसे 'जानें' ही! भले ही डंक लगे, जबरदस्त डंक लगे तब भी उसे जाना ही करे, वेदे ही नहीं, वह स्वसंवेदन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : पर इस मच्छर ने जो काटा और उसकी जो प्रतिक्रिया हुई कि 'इस मच्छर ने मुझे काटा।' उस प्रतिक्रिया को भी स्वसंवेदन में जानता है?

दादाश्री : हाँ, उसे भी जानता है।

प्रश्नकर्ता : पर आपने कहा कि, 'मैं वेदता नहीं, वेदता नहीं' कहें तब फिर लोग ऐसा समझते हैं कि वेदना चली गई।

दादाश्री : ना, ऐसा नहीं। वेदनता को भी वह जानता है। परन्तु इतना सब मनुष्यो के बस का नहीं है इसलिए 'मैं निर्वेद हूँ' ऐसा बोल न, तो उसका असर नहीं होगा। 'आत्मा' का स्वभाव निर्वेद है। यह बोलें तब 'उसे' कोई असर नहीं होता। पर स्वसंवेदन वह ऊँची वस्तु है। वह यदि जानता जाएगा तो स्वसंवेदन में जाएगा। उसमें तो उसे जानना ही है कि यह डंक लगा। उसे भी जाना। फिर वह डंक चला गया उसे भी जाना। ऐसे करते-करते स्वसंवेदन में जाता है, पर निर्वेद तो एक स्टेप है कि बेचैन हुए बिना उसे सहन कर सके।

प्रश्नकर्ता : आत्मा ही स्वसंवेदन से जाना जाता है न?

दादाश्री : आत्मा खुद स्वसंवेदन ही है। पर आपने 'यह' ज्ञान लिया है फिर भी पिछले अहंकार और ममता जाते नहीं न, अभी तक!

प्रश्नकर्ता : स्वसंवेदनशील है, उसका दर्शन समग्र होता है न?

दादाश्री : समग्र होता है। पर वह दशा अभी तो इस काल में नहीं हो सकती वैसी। इसलिए स्वसंवेदन उतना कच्चा रहता है। संपूर्ण स्वसंवेदन हो सकता नहीं इस काल में। समग्र दशा तो केवलज्ञान होता है, तब होती है।

लाइट को कीचड़ रंग सकता है?

आपको आत्मा के प्रकाश की खबर नहीं होगी? ये मोटर की लाइट का प्रकाश इस बांद्रा की खाड़ी में जाएँ, तो उस प्रकाश को

गंध छुएगी या नहीं छुएगी? या फिर वह प्रकाश है वह खाड़ी के रंगवाला हो जाता है?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : तब कीचड़वाला हो जाता है?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : यह प्रकाश कीचड़ को छूता है, परन्तु कीचड़ उसे छूता नहीं। तो जब मोटर का प्रकाश ऐसा है, तो आत्मा का प्रकाश कैसा होगा! उसे किसी जगह पर लेप ही नहीं चढ़ता। इसलिए आत्मा निरंतर निर्लेप ही होता है, असंग ही रहता है। कुछ छुए ही नहीं, चिपके ही नहीं ऐसा आत्मा है।

इसलिए आत्मा तो लाइटस्वरूप है, परन्तु ऐसा लाइट नहीं है वह। वह प्रकाश मैंने देखा हुआ है, वैसा प्रकाश है। ये मोटर की लाइट का प्रकाश तो दीवार से अवरुद्ध हो जाता है। दीवार आई तब वह प्रकाश अवरुद्ध हो जाता है। 'वह' प्रकाश दीवार से अवरुद्ध हो ऐसा नहीं है। सिर्फ यह पुद्गल ही ऐसा है कि जिससे वह अवरुद्ध हो जाता है, दीवार से नहीं रुकता। बीच में पहाड़ हो तब भी अवरुद्ध नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : पुद्गल में क्यों अवरोध है?

दादाश्री : यह पुद्गल है न, वह अंदर मिश्रचेतन है। यदि जड़ होता न तो अवरोधित नहीं होता। पर यह मिश्रचेतन है इसलिए अवरोध है।

प्रश्नकर्ता : यह खाड़ी का और प्रकाश का उदाहरण दिया वह बहुत ही सचोट है।

दादाश्री : हाँ, पर वह हम किसी ही दिन देते हैं, नहीं तो नहीं दिया जा सकता। यह उदाहरण सबको नहीं दिया जा सकता। नहीं तो लोक उल्टे रास्ते चढ़ जाएँ।

न छुए हिंसा, आत्मस्वरूपी को

अब इस रोड़ पर चंद्रमा का उजाला हो, तो वह आगे की लाइट नहीं होती, तो गाड़ी चलाते हैं या नहीं चलाते लोग?

प्रश्नकर्ता : चलाते हैं।

दादाश्री : तब उसे कोई शंका नहीं पड़ती। परन्तु लाइट हो वहाँ शंका पड़ती है। बाहर लाइट हो तो उस उजाले में उसे दिखता है कि ओहोहो इतने सारे जीवजंतु घूम रहे हैं और गाड़ी के साथ टकरा रहे हैं, वे सब मर जाते हैं। पर वहाँ उसे शंका होती है कि मैंने जीवहिंसा की।

हाँ, उन लोगों को लाइट नाम मात्र की भी नहीं है, इसलिए उन्हें जीवजंतु दिखते ही नहीं। इसलिए उन्हें इस बारे में शंका ही नहीं होती। जीव कुचल जाते हैं, ऐसा पता ही नहीं चलता न! पर जिसे जितना उजाला होता जाता है, उतने जीव दिखते जाते हैं। लाइट जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे लाइट में जीवजंतु दिखते जाते हैं कि जंतु गाड़ी से टकरा जाते हैं और मर जाते हैं। ऐसी जागृति बढ़ती जाएँ वैसे खुद के दोष दिखते जाते हैं, नहीं तो लोगों को तो खुद के दोष दिखते ही नहीं न? आत्मा वह लाइट स्वरूप है, प्रकाश स्वरूप है, उस आत्मा को छूकर किसी जीव को कुछ दुख होता ही नहीं। क्योंकि जीवों के भी आरपार निकल जाए, आत्मा ऐसा है। जीव स्थूल हैं और आत्मा सूक्ष्मतम है। वह आत्मा अहिंसक ही है। यदि उस आत्मा में रहो तो 'आप' अहिंसक ही हो। और यदि देह के मालिक बनोगे तो हिंसक हो। वह आत्मा जानने जैसा है। ऐसा आत्मा जान लिया, फिर उसे किस तरह दोष बैठे? किस तरह हिंसा छुए? इसलिए आत्मस्वरूप होने के बाद कर्म बंधते ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : फिर जीवहिंसा करे तब भी कर्म नहीं बंधते?

दादाश्री : हिंसा होती ही नहीं न! 'आत्मस्वरूप' से हिंसा ही होती नहीं। 'आत्मस्वरूप' 'जो' हुआ, हिंसा उससे होती ही नहीं।

इसलिए आत्मज्ञान होने के बाद कोई कानून छूता नहीं है। जब तक देहाध्यास है, तब तक सब कानून हैं और तब तक ही सब कर्म छूते हैं। आत्मज्ञान होने के बाद किसी शास्त्र का कानून छूता नहीं, कर्म छूता नहीं, हिंसा या कुछ भी छूता नहीं।

प्रश्नकर्ता : अहिंसाधर्म कैसा है? स्वयंभू?

दादाश्री : स्वयंभू नहीं। परन्तु अहिंसा आत्मा का स्वभाव है और हिंसा, वह आत्मा का विभाव है। परन्तु वास्तव में स्वभाव नहीं है यह। भीतर अंदर हमेशा के लिए रहनेवाला स्वभाव नहीं है यह। क्योंकि ऐसे तो गिनने जाएँ तो सभी बहुत स्वभाव होते हैं। इसलिए ये सब द्वंद्व हैं।

इसलिए बात को ही समझने की ज़रूरत है। यह 'अक्रमविज्ञान' है। यह वीतरागों का, चौबीस तीर्थंकरों का विज्ञान है! पर आपने सुना नहीं इसलिए आपको आश्चर्य लगता है कि ऐसा भला नये प्रकार का तो होता होगा? इसलिए भय घुस जाता है। और भय घुस जाए तब फिर कार्य नहीं होता। भय छूटे तो कार्य हो न!

वह आत्मस्वरूप तो इतना सूक्ष्म है कि अग्नि के अंदर से आरपार निकल जाए तब भी कुछ न हो। बोलो अब, वहाँ पर हिंसा किस तरह छुए? यह तो खुद का स्वरूप स्थूल है ऐसा जिसे देहाध्यास स्वभाव है, वहाँ पर उसे हिंसा छुए। इसलिए ऐसा होता हो, आत्मस्वरूप को हिंसा छूती हो, तब तो कोई मोक्ष ही न जाए। परन्तु मोक्ष की तो बहुत सुंदर व्यवस्था है। यह तो अभी आप जिस जगह पर बैठे हो, वहाँ रहकर, वे सभी बातें समझी नहीं जा सकतीं, खुद आत्मस्वरूप होने के बाद सब समझ में आ जाता है, विज्ञान खुल्ला हो जाता है!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

ऊपरी	:	बॉस, वरिष्ठ मालिक
कल्प	:	कालचक्र
गोठवणी	:	सेटिंग, प्रबंध, व्यवस्था, आयोजन
नोंध	:	अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना
नियाणां	:	अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक वस्तु की कामना करना
धौल	:	हथेली से मारना
सिलक	:	राहखर्च, पूँजी
तायफ़ा	:	फज़ीता
उपलक	:	सतही, ऊपर ऊपर से, सुपरफ्लुअस
कढ़ापा	:	कुढ़न, क्लेश
अजंपा	:	बेचैनी, अशांति, घबराहट
राजीपा	:	गुरजनों की कृपा और प्रसन्नता
सिलक	:	जमापूंजी, राहखर्च
पोतापणुं	:	मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन
लागणी	:	भावुकतावाला प्रेम, लगाव
उपाधि	:	बाहर से आनेवाला दुःख
च्यवन	:	आत्मा की दैवीय शरीर छोड़ने की क्रिया
वैक्रियिक	:	देवताओं का अतिशय हल्के परमाणुओं से बना हुआ शरीर जो कोई भी रूप धारण कर सकता है
घेमराजी	:	खुद की बहुत सीमित क्षमता हो परंतु सबकुछ कर सके ऐसा घमंड

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दुःखों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
54. आप्तवाणी - 14 (भाग-1)
55. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : 9328661166/9328661177
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	: 9810098564	**बेंगलूर**	: 9590979099
कोलकता	: 9830080820	**हैदराबाद**	: 9885058771
चेन्नई	: 7200740000	**पूणे**	: 7218473468
जयपुर	: 8890357990	**जलंधर**	: 9814063043
भोपाल	: 6354602399	**चंडीगढ़**	: 9780732237
इन्दौर	: 6354602400	**कानपुर**	: 9452525981
रायपुर	: 9329644433	**सांगली**	: 9423870798
पटना	: 7352723132	**भुवनेश्वर**	: 8763073111
अमरावती	: 9422915064	**वाराणसी**	: 9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 722 722 063

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 421127947

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 81129229

www.dadabhagwan.org

संपूर्ण अहिंसा, वहाँ प्रकटे केवलज्ञान

जगत् बिना हिंसा का है ही नहीं। जब आप खुद ही अहिंसावाले हो जाओगे, तो जगत् अहिंसावाला होगा और अहिंसा के साम्राज्य के बिना कभी भी केवलज्ञान नहीं होता है, जो जागृति है वह पूरी आएगी नहीं। हिंसा नाम मात्र की भी नहीं होनी चाहिए। जीव मात्र में परमात्मा ही हैं। किसकी हिंसा करोगे? किसे दुख दोगे?

\- दादाश्री

dadabhagwan.org

ISBN 978-93-86289-29-2

9 789386 289292

Printed in India

Price ₹25